ॐ

योगसाधनकी तैयारी

१. अवैतानिक महावीरोंका स्वागत

"मैं राजा हूं, मैं महाराजा हूं, मैं अधिपति हूं, मैं सम्राट् हूं, मैं स्वराट् हूं, मैं विराट् हूं" ऐसा यदि कोई मनुष्य कहने लगे, तो सब उसको पागल अथवा मूर्ख कहने लग जायेंगे। परंतु विचार करना है कि क्या यह सत्य नहीं है? प्रिय पाठको! आप भी विचार कीजिए कि आपमेंसे प्रत्येक सज्जन राजा और महाराजा वास्तवमें है या नहीं?

आप कदाचित् पूछेंगे कि " यदि हम राजा महाराजा और सम्राट् हैं, तो हमारा राज्य और साम्राज्य कहा है? राज्यके विना राजा नहीं हो सकता, तथा साम्राज्यके विना सम्राट् भी नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है कि हरएक मनुष्य राजा, महाराजा और सम्राट् कैसे हो सकता है? कई राजा होंगे, उनसे कम महाराजा होंगे और सम्राट् तो संख्यामें सबसे कमही होंगे। इसलिये यह कभी नहीं हो सकता कि हरएक मनुष्य सम्राट् बन जाये !! "

परंतु 'वैदिक धर्म' की बात ही और है। यहां ऐसी व्यवस्था है कि हरएक मनुष्य सम्राट् बन सकता है। सम्राटोंको उत्पन्न करनेवाला यह 'वैदिक धर्म' है। यदि आप सम्राट् बनना चाहते हैं, तो आपको अर्थात् आपमेंसे हरएकको साम्राज्य अर्पण करनेका सामर्थ्य "वैदिक धर्म" में है। यह साम्राज्य छोटा नहीं होगा, परंतु जितना चाहे उतना विस्तृत और प्रचण्ड साम्राज्य आपमेंसे हरएकको मिल सकेगा।

यह कैसे हो सकता है, इसका विचार करना है। राज्यके विना राजा नहीं हो सकता है यह बात सच है, परंतु यहां ऐसी अवस्था है कि हम अपना राज्य, महाराज्य अथवा साम्राज्य होते हुए भी कंगाल बने हैं।! अपने राज्यके हम ही स्वामी हैं, परंतु उसको दूसरोंके अधीन करनेके कारण हमारी यह ऐसी अवस्था बन गई है, परंतु कोई सोचता नहीं ?

जिसको अपनी शक्तिका पता लगा है, उसको " स्वराज्य " प्राप्त करनेमें देरी नहीं लग सकती। मनुष्य कैसी भी पराधीन अवस्थामें पहुंच गया हो वह उसी समय पूर्ण स्वराज्य प्राप्त कर सकता है कि जिस समय उसको अपने आत्मिक बलका ज्ञान होता है। अपने सामर्थ्यका प्रभाव विदित होनेके पश्चात् कोई भी पराधीनतामें नहीं रहेगा और उसको कोई भी परतंत्र नहीं कर सकेगा।

पराधीनता तबतक रहती है कि जबतक हरएक अपने आपको हीन और दीन समझता है। जो अपने आपको हीन और दीन समझता है, उसको कौन उठा सकता है ? जो सचमुच अपने आपको दिलसे कमजोर मानता और समझता है, वह अपनी पराधीनताकी शृंखला स्वयं अपने हाथोंसे बनाता है और अपने पैरोंमें धारण करता है।!

पाठको ! आप सम्राट् होते हुए साधारण कैदीके समान अपने आपको परतंत्र क्यों मानने लगे हैं ? आपको किसी दूसरेने कैदी नहीं बनाया है। स्वयं अपनेही विचारोंसे और अपने ही प्रयत्नोंसे आप कैदमें गये हैं और पराधीन बने हैं !! और जब कभी आपकी मुक्ति होगी, तब आपको कोई दूसरा स्वतंत्र नहीं कर सकेगा, जब तक आपको ज्ञानमें वैसा अनुभव नहीं होगा। अर्थात् आपके बंधनके लिये तथा आपकी स्वतंत्रताके लिये आपका मन ही कारण है। अर्थात् आपके विचार जैसे होंगे वैसे आप बन सकते हैं।

तात्पर्य, राजा बननेके आपके विचार होंगे तो आप राजा बन सकते हैं और सम्राट् बननेका आपका विचार होगा, तो आप सम्राट् भी बन सकते हैं। न आपको कोई पराधीन रख सकता है और न आपको कोई स्वतंत्र कर सकता है। " आपही आपके शत्रु और आपही मित्र हैं। " आपही अपने तारक और आप ही अपने मारक हैं। आप ही स्वयं अपने उद्धारक हैं और आप ही अपने पतन

के कारण हैं। दूसरा कोई आपको कभी गिरा नहीं सकता और न ऊपर उठा सकता है। फिर मैं आपसे पूछता हूं कि आप अपने आपको क्यों गिरा रहे हैं? अपना साम्राज्य अपने क्यों गँवाया? अपना महाराज्य आपने क्यों तोड दिया? अपने राज्यसे आप क्यों भाग गये?

क्या आपको पता है कि आप कौन हैं? मैं यदि कहूं कि आप स्वयं "इंद्र" हैं, तो कदाचित् आप मानेंगे भी नहीं! परंतु वेद ही कहता है कि, 'जीवात्माका नाम इंद्र है।' आप जीवात्मा हैं, इसलिये आपमेंसे प्रत्येक "इंद्र" है। आपकी भाषामें भी इसका प्रमाण है। आप अपने हाथ, पांव, आंख, नाक आदिको "इंद्रिय" कहते हैं। "इंद्रिय" क्या है? जो 'इंद्र' की शक्ति है वही "इन्द्रि-य" होती है। आप अपने अवयवोंको इंद्रिय कह रहे हैं और मान रहे हैं, इससे सिद्ध है कि आप अपने आपको भी "इंद्र" ही मान रहे हैं। फिर आपके "राजा, महाराजा और सम्राट्" होनेमें शंका क्यों है? यदि आप सचमुच इंद्र हैं, तो आप सम्राट् भी हैं।

मनुष्योंके राजाको 'नरेन्द्र' कहते हैं, पक्षियोंके राजाको 'खगेन्द्र' कहते हैं, मृगोंके राजाको 'मृगेंद्र' कहते हैं। नरोंका इंद्र, खगों (पक्षियों) का इंद्र, मृगोंका इंद्र जो होता है, वह उस जातिका राजाही होता है। इस प्रयोगसे आपको ज्ञात होगा कि इंद्र शब्द राजा, महाराजा और सम्राट्का भाव बताता है। वेद भी कहता है कि—

(१) इन्द्रः सत्यः सम्राट्॥ (ऋ. ४।२१।१०)
(२) त्वमिंद्राऽधिराजः॥ (अ ६।९८।२)
(३) इंद्रो यातोऽवसितस्य राजा॥ (ऋ १।३२।१५)

"(१) इंद्र सचा सम्राट् है। (२) हे इंद्र! तू अधिराजा है। (३) इंद्र स्थावर जंगमका राजा है।"

यह वेदका कहना है। जिस कारण जीवात्मा इंद्र है, उसी कारण जीवात्मा सम्राट् अधिराजा और स्थावर-जंगमका महाराजा भी है। यह निश्चय रखिये कि वेदका कहना कभी असत्य नहीं हो सकता। यह दूसरी बात है कि आप वेद

के कथनको न मानते हुए अपने आपको हीन, दीन और दुर्बल मान रहे हैं। और यही कारण है कि आप स्वयं राजा और महाराजा होते हुए भी साधारण कैदीके समान पराधीन बन गये हैं। आप सम्राट् होनेपर भी अपने आपको पराधीन समझ रहे हैं!!! आप स्वामी और धनी होते हुए भी दास और निर्धन बने हैं। यदि आप आज्ञा करेंगे तो आपकी आज्ञा मानी जा सकती है, परंतु कुवि-चारोंके अधीन होनेके कारण आप आज्ञा करना ही भूल गये हैं॥

प्रिय पाठको! सोचिये तो सही, यह क्या चमत्कार है? जीवात्मा राजा और महाराजा है और उसका राज्य अथवा साम्राज्य इस देहमें है। परंतु इस-में कितना परिवर्तन हो गया है कि यह महाराजा और सम्राट् आत्मा यहां ही अपने राज्यमें तथा अपनी ही राजधानीमें अपने आपको कैदी समझने लगा है! यह अपना साम्राज्य शत्रुओंके अधीन करके स्वयं हीन और दीन बनकर दूसरोंकी सहायतासे अपना गुजारा चलानेका यत्न कर रहा है!!! स्वयं समर्थ होते हुए निर्बलके समान व्यवहार कर रहा है!!

अहमिंद्रो न पराजिग्ये॥ (ऋ० १०।४८।५)

" मैं इंद्र हूं इसलिए मेरा पराभव नहीं हो सकता " ऐसा इसका भाव होना चाहिए था, परंतु इस उच्च भावके स्थानपर यह समझता है कि " मैं अनादि कालसे बंधनमें हूं, मैं कैदी हूं, मैं कारागृहमें हूं, मैं कभी स्वतंत्र नहीं था, मैं पराभूत हुआ हूं! " यह महाराजा ऐसा पागल बना है! यह सम्राट् स्वयं कैदमें जाकर रहा है!!! अब इसका यह पागलपन कैसे दूर हो सकता है?

कुत्सित विचार इसके शत्रु हैं, हीन भाव इसके घात करनेवाले हैं। अपनी शक्तिपर अविश्वास होनेसे उक्त शत्रु प्रबल होते हैं और आत्मिक बलपर दृढ-विश्वास होनेसे उक्त शत्रु दूर होते हैं। इसलिये, हे भाई जीवात्मन्! यह बात समझो, कि " तुम्हारा जय और पराजय तुम्हारे अंदरके भावोंके अनुकूल होता है। " इसलिए वेद कहता है कि " कानसे अच्छी बात सुनो, आंखोंसे अच्छे पदार्थ देखो और आयु समाप्त होनेतक ज्ञानियोंकी सेवा करो। " ऐसा करनेसे सुविचार जागृत रहते हैं और सुविचारोंके कारण सदा विजय होता है। यह सम्राट्

आत्माराम महाराजाधिराज है। इसके राज्यमें एक तरफ सप्त ऋषियोंका पवित्र आश्रम है। ये सप्त ऋषि इस पवित्र आश्रममें यज्ञयाग कर रहे हैं। देखिये, इनका सत्र कैसे चल रहा है !! यह सौ वर्ष चलनेवाला सत्र है। सप्तऋषि ही स्वयं इसमें हवन कर रहे हैं, देखिये—

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षंति सदमप्रमादं॥

(यजु. ३४।५५)

" सात ऋषि प्रत्येक शरीरमें (हिताः) रखे हैं और दूसरे सात (अ-प्रमादं) दोष न करते हुए इस (सदं) यज्ञगृहका रक्षण करते हैं (,'

इस मंत्रमें सप्त ऋषियोंके सौ वर्ष चलनेवाले सत्रका वर्णन है। ये सप्तऋषि कौन हैं ? इस शंकाका उत्तर यह है कि सात ज्ञान इंद्रियाँ ही सप्त ऋषि हैं। दो आंख, दो कान, दो नाक, एक वागिन्द्रिय इन सात इंद्रियोंसे ज्ञान अंदर आता है। ऋषियोंका ज्ञान-यज्ञ ही हुआ करता है। मस्तिष्ककी अग्निमें ज्ञानकी आहुतियाँ ये सप्त ऋषि डाल रहे हैं और इनका यह ज्ञानयज्ञ सौ वर्ष तक चलता रहेगा। क्योंकि मनुष्यकी साधारण आयु सौ वर्षकी है। सौ वर्ष चलनेवाला यह ज्ञानसत्र विशेषतः मस्तकके विभागमें ये सातों ऋषि चला रहे हैं। इनका मुख्य हवनकुंड मस्तकमें है। इनके द्वारा प्राप्त ज्ञान मस्तिष्कमें संकलित हो रहा है। ये ज्ञानी ऋषि ब्राह्मण हैं। यह ब्राह्मणोंका ज्ञानयज्ञ है। उक्त सम्राट्के राष्ट्रमें यह यज्ञ चल रहा है और यज्ञका फल सम्राट्को भी मिल रहा है। प्रजाजन जो कार्य करते हैं, उसका अंश महाराजाधिराजको कररूपसे मिलना ही चाहिए। ब्राह्मणोंके ज्ञानयज्ञमें ज्ञानके संस्कार आत्मातक पहुंचते हैं, यही ब्राह्मणोंका करभार है।

पुरुषो वाव यज्ञः॥ (छा. उ. ३।१६।१)

" मनुष्य यज्ञरूप है " जन्मसे मरणतक यह यज्ञ चलता है। इसके तीन सवन निम्न प्रकार हैं—

तस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाणि तत्प्रातः सवनं० ॥ १ ॥
यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि तन्माध्यंदिनं सवनं० ॥ ३ ॥
यान्यष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि तृतीयं सवनं० ॥ ५ ॥ (छां. उ. ३।१६)

" मनुष्यके आयुष्यके पहिले चौवीस वर्ष इस यज्ञका प्रातःसवन है, उसके पश्चात्‌के चवालीस वर्ष इस यज्ञका माध्यंदिन सवन है, तथा उसके पश्चात्‌के अडतालीस वर्ष इस यज्ञका तृतीय सवन होता है। " इस प्रकार—

प्रातःसवन.. २४ वर्ष= (प्रातःकाल २४ वर्षकी आयुतक)
माध्यंदिन सवन ४४ वर्ष= (मध्याह्नकाल ६८ वर्षकी आयुतक)
तृतीय सवन... ४८ वर्ष= (सायंकाल ११६ वर्षकी समाप्तितक)

११६ साधारण आयुकी मर्यादा।

यह यज्ञ एक सौ सोलह वर्षतक चलता है, इसके पश्चात् मृत्यु होकर इस यज्ञकी पूर्णता होती है। यज्ञमें प्रातःकालमें, मध्यंदिनमें और उसके पश्चात् तीसरे प्रहरमें तीन सवन होते हैं। मनुष्यका संपूर्ण आयुष्य एक दिन समझ कर उसके तीन विभाग उक्त प्रकारके माने गये हैं। ज्ञानयज्ञमें भी ब्राह्मणोंके लिये ये तीन सवन हैं। प्रथम आयुमें ज्ञान प्राप्त करना, मध्य आयुमें उसका मनन करना और उत्तर आयुमें वह ज्ञान दूसरोंको अर्पण करना, यह आयुमरका ज्ञान-यज्ञ है। यही पूर्वोक्त सप्त ऋषियोंके आश्रममें चल रहा है। वेद कहता है कि—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् ॥ (ऋ. १०।९०।१२)

" इसका मुख ब्राह्मण है। " अर्थात् (ब्रह्म) ज्ञानका कार्य कर रहा है। यह मुखका स्थानही " ब्रह्मावर्त देश " किंवा ब्रह्मयज्ञका मंडप है। जिस ब्रह्मावर्त क्षेत्रका माहात्म्य वर्णन किया जाता है, वह इस शरीर रूपी राष्ट्रमें यह मस्तकही है, जिसमें नेत्रश्रोत्रादि सब इंद्रियरूप ऋषि तपस्या कर रहे हैं। इस प्रकार इस आत्माके साम्राज्यमें यह ऋषियोंका यज्ञ चल रहा है।

इसके अतिरिक्त इसका वैभव और देखिये। क्षत्रिय भी यहां कार्य कर रहे हैं। क्षत्रियोंका कार्य संरक्षणका होता है। दुःखसे बचानेवाले क्षत्रिय हुआ करते हैं। वेद कहता है कि—

बाहू राजन्यः कृत ॥ (ऋ. १०।९०।१२)

" बाहू क्षत्रिय बनाये गये हैं। " इस राज्यमें बाहुही क्षत्रिय हैं। परंतु यह कोई न समझे कि केवल बाहुही क्षत्रिय हैं और रक्षणका कार्य केवल बाहुओं

द्वारा ही हो रहा है। जिस प्रकार पूर्वोक्त ज्ञानयज्ञमें पंडितोंका वर्णन हुआ है और उसमें सात जातिके पंडित संमिलित हुए हैं, उसी प्रकार निम्न जातिके कर्मवीर क्षत्रिय इस राष्ट्रमें विद्यमान हैं। दो हाथ, एक मुख, एक गुदद्वार और एक मूत्रद्वार तथा दो पाव, ये सात जातियोंके क्षत्रिय शरीरका दुःख निवारण कर रहे हैं। इनमें पाव शूद्र होने पर भी युद्धभूमिमें उनका उपयोग होनेसे उनकी गिनती यहां क्षत्रियोंमें की है। वेदमें इसी दृष्टिसे " ब्राह्मण और क्षत्रियों " का ही स्थानस्थानपर उल्लेख आता है, जैसा—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यचौ चरत सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥ (य २०।२५)

" जहां ब्राह्मण और क्षत्रिय मिल जुलकर रहते हैं, वह पुण्य प्रदेश है।" यहां सब जनता ब्राह्मण-क्षत्रियोंमें विभक्त मानी है अर्थात् ब्राह्मणोंसे जो भिन्न हैं, वे सब क्षत्रिय हैं। क्योंकि वे सब क्लेश दूर करनेका कार्य करते हैं। इस प्रकार सामान्य वर्णन है। अस्तु। ये सब कर्मवीर दोषोंको दूर करके दुःखोंसे बचाते हैं। इसलिये कहा है कि—

सप्त रक्षंति सदमप्रमादम्। (य ३४।३५)

" ये सात क्षत्रिय इस यज्ञका रक्षण करते हैं। " क्योंकि रक्षा करनेका कार्य क्षत्रियोंका ही है। सात ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं और सात क्षत्रिय उस यज्ञकी रक्षा कर रहे हैं। यहां सात जातियां समझना उचित है, क्योंकि एक कानके आधिकारमें करोडों छोटे कीटाणु कार्य कर रहे हैं। उसी प्रकार बाहुमें भी करोडो क्षत्रिय कीटाणु हैं। इस प्रकार यह महाराज्य करोडों प्रजा क्षत्रियोंका साम्राज्य है तथा क्षत्रियोंके समूहमें वैश्यशूद्रादिक सभी विद्यमान हैं। इस संपूर्ण महाराज्यका महाराजा आत्मा है, इसलिये यह सच्चा महाराजा है। इसकी व्यवस्था निम्न प्रकार है—

आत्मा	... ...	महाराजा अथवा सम्राट्
बुद्धि	.	आमत्रण परिषद्, मन्त्रीमंडल
मन	... ...	सभा और समिति

ज्ञानेंद्रिय . ... ब्राह्मण-दल
कर्मेंद्रिय ... ... क्षत्रियादिकोंका संघ
शरीर ... ... राष्ट्र, कर्मभूमि

सभा और समितिमें ब्राह्मणक्षत्रियादिकोंके प्रतिनिधि जिस व्यवस्थासे आते हैं, उसी व्यवस्थासे ज्ञान और कर्म इंद्रियोंके अंश मनमें संमिश्रित हुए हैं। इस प्रकार यह साम्राज्य है। इसके अतिरिक्त जो अंदरके स्थानमें अन्य वीर इस राष्ट्रका हित कर रहे हैं, उसकी गिनती नहीं हुई है। उनका समावेश उक्त क्षत्रियोंमें ही करना उचित है।

इस प्रकारके राष्ट्रका अधिपति यह जीवात्मा है। जब यह स्थूल शरीरपर कार्य करता है तब इसकी पदवी " राजा " होती है। जब यह सूक्ष्म शरीरपर कार्य करनेमें प्रवीण होता है, तब इसको " महाराजा " कहते हैं। जब यह कारणशरीरपर कार्य करनेमें कृतकारी होता है, तब इसीको " सम्राट् " कहते हैं और जब यह महाकारणशरीरमें निवास करके वहांका आनंद अनुभव करने लगता है, तब इसीको " स्वराट् " किंवा " विराट् " कहते हैं। यही इसकी मुक्त अवस्था है। इस समय यह अपनेही तेजसे प्रकाशित होता है। अन्य शब्द द्वारा प्रकट होनेवाली अवस्थाएं इससे छोटी अवस्थाएं हैं। जीवात्माकी सबसे श्रेष्ठ अवस्था स्वराट् और विराट् शब्दोंद्वारा प्रकट हो रही है। यही स्वराज्यका महत्त्व है।

अब पाठक समझ गये होंगे कि हरएक मनुष्यके अंदर जो आत्मा बैठा है, वही राजा, महाराजा, सम्राट्, विराट् आदि है, परंतु हीन विचारोंके अधीन होनेके कारण यह अपने अधिकारसे भ्रष्ट हुआ है। जब इसको आत्माकी शक्तिका अनुभव होगा, तब यह अपने स्वराज्यमें आनंद करने लगेगा।

इसके साम्राज्य वर्णन जितना चाहे विस्तारपूर्वक कथन किया जा सकता है और उसका संक्षेप भी किया जा सकता है। यहां सारांशसे उसका स्वरूप बताया है। अब इसका चित्र बनाकर उक्त बात ही फिर लिखते हैं—

	क्षत्रिय		शूरवीर	
			वैश्य	शूद्र
ब्राह्मण मस्तक	हृदय	अग्नि	मध्य	
		जनन इंद्रिय		पाद
	बाहु		हस्त	
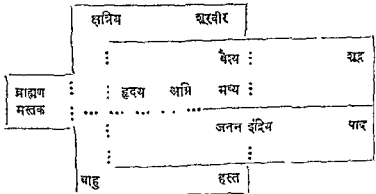
ज्ञानयज्ञ शौर्ययज्ञ वीर्ययज्ञ देहयज्ञ

उपरके चित्रसे व्यक्तिमें और राष्ट्रमें जिन बातोंकी समता है, उन बातोंकी कल्पना व्यक्त हो सकती है। तथा शरीरमें राष्ट्रभाव और राष्ट्रमें शरीरभाव किस प्रकार समझा जा सकता है, इसका भी ज्ञान हो सकता है। वेदकी गुप्त बात समझमें आनेके लिए इस कल्पनाकी पूर्ण जागृति होनी चाहिए। देखिये—

(१) मनुष्यका शरीर (जनताका अथवा) राष्ट्रका संकुचित आकार है,

(२) राष्ट्र अथवा जनता मनुष्यका विस्तृत शरीर है।

व्यक्ति व्यष्टि	समष्टि
ज्ञान	ब्राह्मण वर्ण
शौर्य	क्षत्रिय वर्ण
वीर्य	वैश्य वर्ण
सेवा	शूद्र वर्ण

इस प्रकार यह विस्तार और संकोचकी कल्पना है । एक देहमें जो गुण हैं, वे ही राष्ट्रमें वर्णरूपमें परिणत हुए हैं । अपने अन्दर राष्ट्रीयता और राष्ट्रमें अपनापन देखना चाहिये । समष्टि-व्यष्टिमें एक भावनाका दर्शन करना चाहिये । दोनों स्थानोंमें कार्य करनेवाले एक ही प्रकारके नियम हैं । जिसके विचारमें यह बात आ जायगी, वह अपने आत्माका साम्राज्य ठीक प्रकार जान सकता है ।

अपने शरीरमें ब्राह्मणक्षत्रियोंका तथा अन्य वर्णोंका निवास इस प्रकार जाना जा सकता है । यह अपना ही वैभव है । परंतु जिनका उक्त स्थानमें वर्णन किया है, वे ब्राह्मण और क्षत्रिय वेतन लेकर कार्य करनेवाले हैं, यह बात भूलनी नहीं चाहिये । जबतक आप उन ब्राह्मणोंको दक्षिणा देंगे, तबतक वे आपका यज्ञ चलाते जायेंगे, तथा जबतक आप क्षत्रियोंको वेतन देंगे, तबतक वे इस राष्ट्रका संरक्षण करते रहेंगे । आंख, नाक, कान आदि ज्ञान इंद्रिय तथा हस्तपाद आदि कर्म इंद्रिय यहां इस शरीरमें तबतक ही कार्य कर सकते हैं कि जबतक शरीरको अन्न मिलता रहेगा । शरीरमें जो अन्न प्राप्त होता है, वह रसरूपसे प्रत्येक इंद्रियको मिलता है । यही इनका वेतन है ।

वेतन लेकर राष्ट्रसेवा करनेवाले बुरे नहीं होते, परंतु " जो अवैतनिक स्वयंसेवक होते हैं, उनकी योग्यता निःसंदेह विशेष होती है । " उक्त ज्ञानवीर और कर्मवीरोंकी वैतनिक सेवा है । जिस प्रकार मासिक वेतनपर अध्यापक और सैनिक राष्ट्रमें रखे जाते हैं, उसी प्रकार इनका कार्य शरीरमें है । नाकके लिये सुगंध ही चाहिये, दुर्गंध आनेपर यह नाराज होता है । आंखको उत्तम सुंदर आकार चाहिये, कुरूप शकल सम्मुख आनेपर यह घबराता है । कानके लिये मधुर स्वर चाहिए, कर्कश आवाज जब आने लगती है तब यह असंतुष्ट होता है । जिव्हाके लिये उत्तम स्वादु पदार्थ चाहिये, वैसे पदार्थ न मिलनेपर यह हठ करने लगती है । चर्मेंद्रिय को नरम नरम स्पर्शवाले पदार्थ चाहिये, तब यह कार्य करता है । नहीं तो हड़ताल करने लगता है । इस प्रकार ये अध्यापक किंवा ब्राह्मण बड़ा ऐशआराम चाहते हैं । इनमेंसे कोई भी कष्ट करनेके लिये तैयार नहीं है । इनको कितनी भी दक्षिणा दी जाय ये कभी तृप्त नहीं होते । इनके अंदर इस प्रकार भूख होनेसे इनका

वेतन बढाते बढाते महाराजासाहेब किसी किसी समय तंग आजाते हैं, परंतु इनको उसकी कोई पर्वाह नहीं है। "ऐसे वैतनिक सेवक राष्ट्रका क्या लाभ करेंगे?"

हाथ, बाहु आदि क्षत्रिय भी वेतन मिलने तक ही सेवाका कार्य करते हैं। मलमूत्रद्वारोंके रक्षक भी थोडीसी विरुद्ध बात होनेपर ऐसे नाराज होते हैं और अपना काम छोड देते हैं। इन भंगियोंकी हड्ताल जब कभी इस राष्ट्रमें हो जाती है, तब सम्पूर्ण राष्ट्रपर बडी ही आपत्ति आ जाती है।

इस प्रकार उक्त ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें पूर्ण स्वार्थ होनेसे, ये अपने सुखका विचार अधिक करते हैं और सब शरीररूपी राष्ट्रका विचार कम करते हैं। इनमें जातिभेद भी ऐसा कठोर है कि एक जातिका वीर दूसरी जातिके वीरका स्थान स्वीकार करनेके लिये कभी तयार नहीं होता, इसीलिये कान कभी आखके स्थानपर नहीं आता!! अपनी अपनी जातिके बंधनोंमें ही ये रहते हैं। इस प्रकार इनके आपसके झगडे और इनका स्वार्थ है। जब तक हे खुश रहते हैं तब तक कार्य ठीक चलता है, परंतु जब ये बिगड बैठते हैं, तब बडी विपत्ति होती है। इसलिये महाराजाको इन पर पूरा विश्वास रखना उचित नहीं है।

यहां बहुतसे पाठक कहेंगे कि ऐसा सम्राट् बनना बडा ही कष्टप्रद है!! सच-मुच यही अवस्था है। जो सम्राट अपने वेतनभोगी सैनिकोंके बलपर विश्वास रखता है और उनके शस्त्रास्त्रोंने अपने आपको बलवान् समझता है, वह वैसाही फस जाता है कि जैसा जीवात्मा इन इंद्रियोंपर विश्वास करता हुआ फसता है। जब इस प्रकार यह जीव इन इन्द्रियोंके अधीन हो जाता है, तब उसपर जो विपत्तियां आती हैं, इनका वर्णन करना अत्यंत कठिन है।

यदि केवल इतने ही इस राष्ट्रके सेवक होते, तो इसके साम्राज्यमें कोई गौरव न होता, क्योंकि उक्त वीरोंके स्वार्थके साथ साथ उनको आराम और विश्राम भी बहुत लगता है। आधा समय तो इनके आराम और विश्राममें ही चले जाता है। वेतन लेंगे, आराम और विश्राम करेंगे और शेष समयमें यदि ये खुश रहें तो ही काम करेंगे!!! ऐसी इनकी दशा है! इसलिये इनकी रक्षासे इस राष्ट्रकी रक्षा नहीं हो सकती। फिर इस सम्राट् को किन वीरों पर निर्भर रहना चाहिये?

इस राष्ट्रमें अवैतनिक कार्य करनेवाले कई स्वयंसेवक हैं वे ही इस राष्ट्रके सच्चे हितचिंतक हैं। बिलकुल वेतन नहीं लेते, भोग नहीं भोगते, आराम और विश्राम नहीं करते और लगातार कार्य करते हैं। इनपर विश्वास करके ही सम्राट को आराम प्राप्त हो सकता है। इनका वर्णन वेद निम्न प्रकार रहा है—

सप्ताप स्वपतो लोकमीयु' तत्र जागृतो
अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥ (यजु० ३४।५५)

" जब उक्त सातों वीर सोनेवालेके स्थानमें लीन होते हैं, तब उस सत्रमें कभी न सोनेवाले दो देव जागते हैं। "

ये हमेशा जागनेवाले और कभी न सोनेवाले देव श्वास और उच्छ्वास हैं। येही प्राण हैं। इनके पांच भेद हैं– प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये इनके मुख्य भेद हैं, इनके अतिरिक्त और पांच भेद हैं नाग कूर्म कृकल देवदत्त और धनंजय ये उपप्राण हैं। सब मिलकर प्राणके दस भेद हैं। ये दस महावीर इस राष्ट्रकी अवैतनिक सेवा करते हैं। भोजन मिले या न मिले, विश्राम मिले या न मिले, सुख हो या दुःख हो, संपत्ति मिले अथवा आपत्ति आये, इन महावीरोंकी निरंतर सेवा चलती है। ज्ञानेंद्रियोंके पंडित, कर्मेंद्रियोंके शूर निद्रामें सो जानेपर भी, ये अवैतनिक महावीर स्वयंसेवक अहर्निश कार्य करते ही रहते हैं। ये थकते नहीं, विश्राम नहीं करते और कभी अपना कार्य बंद भी नहीं करते हैं। जब ये अपना कार्य बंद करते हैं, तब यह संपूर्ण साम्राज्य टूट जाता है। जबतक इनकी सेवा चलती है तबतक साम्राज्यमें अद्वितीय ' जीवन ' रहता है।

इनकी निःस्वार्थ सेवा होती है। न इनकी खुशबूसे प्यार होती है और न बदबूसे वैर होता है, न ये सुरूपतापर प्रेम करते हैं और न कुरूपतासे द्वेष करते हैं, न मधुर स्वरमें इनकी रुचि है और न कठोर स्वरसे अप्रसन्नता है, न ये मृदु स्पर्श चाहते हैं और न तीक्ष्ण स्पर्शका तिरस्कार करते हैं। ' एकही प्रकारसे और एकनिष्ठासे ये अव्याहत राष्ट्रसेवाका कार्य करते हैं। ' इनकी यह इस प्रकार निःस्वार्थ सेवा होती है, इसलिये जीवात्माको सम्राट् होनेका आनंद है। इनके साथ रहनेसे तथा इनकी सहायतासे ही सम्राट्को स्वानंद-साम्राज्य प्राप्त

होता है। इस प्रकार "जो सम्राट् वेतन लेनवाले सैनिकोंपर विश्वास न करता हुआ, अवैतनिक, निःस्वार्थी राष्ट्रहितैकतत्परमहावीरोंकी अनुकूलता संपादन करेगा, वही सच्चा सम्राट् बनेगा।"

प्रिय पाठको! आपके राज्यमें अर्थात् आप प्रत्येकके शरीरमें प्राणही अवैतनिक महावीर हैं और उनकीही निःस्वार्थ सेवा आपके स्वास्थ्यके लिये हो रही है। इस बातका अनुभव कर लीजिये और इन महावीरोंका स्वागत करनेके लिये तैयार हो जाइये। आप जितना ख्याल अपने इंद्रियोंका करते हैं, उतना इन प्राणोंका नहीं करते!! यह आपकी बडी भारी भूल है। आप अपने सच्चे हितैषियोंका ख्याल नहीं करते, परंतु स्वार्थी सेवकोंका ही विशेष विचार कर रहे हैं!!

आप पूछेंगे कि इन महावीरोंका सत्कार कैसे किया जाय? "प्राणायाम" की विधिसे इनका सत्कार किया जाता है। प्राणायामद्वारा इन महावीरोंका सत्कार करेंगे, तो आपका बडा भला हो सकता है, आपका साम्राज्य दीर्घ काल तक रहेगा। उनका स्वागत करनेसे आपकाही अपना गौरव बढना है। वे बिचारे स्वयं कुछ चाहतेही नहीं, खानेपीनेके विना आपकी सेवा कर रहे हैं फिर उनका सत्कार करना भी आपसे नहीं होता?

इसलिये प्रिय पाठको! अपने प्राणोंका सत्कार कीजिये। सबेरे और शामको नियमपूर्वक और विधियुक्त प्राणायाम कीजिये। अपनी प्राणशक्तिका महत्त्व जानकर, उनका प्रभाव समझकर और उनका कार्य पहचानकर उनका सत्कार कीजिये।

"विधियुक्त प्राणायाम करनेसे आपका उत्साह बढेगा, दीर्घ आयु प्राप्त होगी और अपूर्व आनंद अनुभवमें आ जायगा। इसलिये इन अवैतनिक स्वयंसेवकोंका ही सदा सत्कार कीजिए। भूलना नहीं।" क्या आप इस बातका स्मरण रखेंगे?

२. योग-साधन

सामान्य स्वरूप

वैदिक धर्मके तत्त्व आचरणमें लानेके लिये योगसाधनके अनुष्ठानकी अत्यंत आवश्यकता है। योगसाधनके विना धर्मका आचरण होना कठिन है। इसलिये योगसाधनका विचार करना आवश्यक है।

चित्तकी वृत्तियोंका निरोध ही योग है। गीतामें कहा है कि 'कर्मकी कुशलताका नाम योग है,' तथा सुख और दुःखके विषयमें जो समताबुद्धि होती है, उसको योग कहते हैं। सुखप्राप्तिसे हर्ष होता है, तथा दुःख प्राप्त होनेसे विषाद होता है। बाहरके सुखदुःखका जो यह इष्ट और अनिष्ट परिणाम चित्तपर होता है, उससे चित्तकी वृत्ति ऊंची नीची होती है। इस प्रकार चित्त चंचल होनेके कारण अस्वस्थता होती है। इस अस्वस्थताको दूर करना और चित्तकी समता स्थिर करना, योगका प्रयोजन है। चित्तकी चंचल वृत्तिके कारण मनुष्यका अत्यंत नुकसान होता है। इसका अनुभव विचारकी दृष्टिसे प्रत्येक दिनके व्यवहारमें पाठक देख सकते हैं।

जब योगकी सिद्धि होती है, तब आत्मा अपने निज रूपमें स्थिर रहता है। साधारण अवस्थामें आत्मा चित्तकी वृत्तियोंके साथ घूमता रहता है। जिस समय चित्तमें जो वृत्ति होती है, उस वृत्तिके अनुसार आत्मा बन जाता है। यही आत्माकी पराधीनता है। अर्थात् इस आत्माकी पराधीनताको दूर करके उसको स्वतंत्रता प्राप्त करा देना योगका कार्य है। इस प्रकार योगसाधनसे स्वातंत्र्य प्राप्त होता है। इसलिये हरएक मनुष्यको योगसाधन करना आवश्यक है।

चित्तकी वृत्तिमें काम, क्रोध लोभ इत्यादि विकार उत्पन्न हो गये तो आत्मा भी कामी, क्रोधी, लोभी होकर अनर्थ करनेके लिये प्रवृत्त होता है। इस प्रकार काम-क्रोधादि शत्रुओंके आधीन हो जानेसे आत्माका स्वातंत्र्य नष्ट होता है। यही साधारण लोगोंकी हालत है। यही पारतंत्र्य है और यही दुःख है; इसको हटाना प्रत्येकका पुरुषार्थ है।

जीवात्माकी स्वतंत्रता उसको प्राप्त करा देना योगका उद्देश्य है। आत्मा सबका राजा है, चित्तकी वृत्तियोंका वह गुलाम नहीं है, परंतु उनका वह स्वामी है। मन और बुद्धिका वह प्रभु है, इंद्रियोंका वह अधिष्ठाता है, इसका ज्ञान आत्माको योग-साधनद्वाराही प्राप्त होता है। योगसाधन करनेके पूर्व जो आत्मा अपने आपको चित्तवृत्तियोंका गुलाम समझता था, वही आत्मा योगसाधन करनेके पश्चात् अपने आपको स्वामी और अधिष्ठाता अनुभव करने लगता है। यह योगसाधनका महत्त्व है।

चित्तकी पांच वृत्तियाँ होती हैं और प्रत्येकके दो भेद होते हैं। एक चित्तकी वृत्ति होती है, वह क्लेश उत्पन्न करती है और दूसरी वृत्ति होती है, वह क्लेशका निवारण करती है। देखिये, कामका उपभोग करनेकी चित्तकी एक वृत्ति होती है। उसके प्रबल हो जानेसे मनुष्य कामी बनता है और अपनी शक्तिका नाश करता है। यह क्लेशकारक चित्तवृत्ति है। इसी प्रकार अनेक भेद इसमें हैं, जिनका विचार पाठक कर सकते हैं। क्लेशको दूर करनेवाली दूसरी वृत्ति चित्तमें उत्पन्न होती है, वह कहती है कि 'परोपकार करो, ईश्वरभक्ति करो' आदि। इस वृत्तिसे क्लेशोंका निवारण होता है।

(१) प्रमाण, (२) विपर्यय, (३) विकल्प, (४) निद्रा और (५) स्मृति ये चित्तकी पांच वृत्तियाँ हैं। ये वृत्तियाँ ही क्लेशकारक और क्लेशनिवारक हो सकती हैं। जैसे उदाहरणके लिये देखिए, योगनिद्रा लेनेसे मनुष्यका आरोग्य बढ़ता है, इस लिये निद्रा क्लेशनिवारक कही जा सकती है। परंतु यही निद्रा अत्यंत आने लगी तो सुस्ती बढ जानेके कारण मनुष्य निकम्मा हो जाता है। इसी प्रकार स्मृतिवृत्ति है। स्मरणशक्तिसे स्मृति रहती हैं। अच्छे अच्छे उपदेशोंका स्मरण रखनेसे मनुष्यका अभ्युदय हो सकता है, परंतु दूसरोंके दोषों-काही निरंतर स्मरण करनेसे मनुष्य गिर जाता है, अर्थात् यही स्मरणशक्ति जैसी उन्नतिका साधन हो सकती है, उसी प्रकार गिरावटका हेतु भी बन सकती है। इसी प्रकार अन्य सब वृत्तियोंके विषयमें समझिये।

प्रत्यक्ष प्रमाण, अनुमान और आगम ये तीन प्रमाण हैं। प्रमाणवृत्ति तीन प्रकारकी होती है-प्रत्यक्ष प्रमाण, अनुमान प्रमाण और आगम प्रमाण। जो इंद्रियों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है, वह प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्रत्यक्ष ज्ञानके

अनुसार जो तर्क किया जाता है, उसको अनुमान कहते हैं। तथा प्राचीन सत् पुरुषोंका जो अनुभव शब्दोंमें संगृहीत होता है, वह आगम होता है। यह वृत्ति भी क्लेशकारक और क्लेशनिवारक होती है। सद्गुरुके शब्दपर विश्वास रखनेसे लाभ हो सकता है और ढोंगीके शब्दपर विश्वास रखनेसे हानि होती है। प्रमाण-पूर्वक तर्क करनेसे लाभ होता है, परंतु वितर्कमें हानि होती है। इस प्रकार प्रमाणवृत्ति लाभदायक भी है और हानिकारक भी होती है।

उलटा ज्ञान होना विपर्यय कहलाता है। यथार्थ स्वरूपसे भिन्न कुछका कुछ समझना विपर्ययवृत्ति कहलाती है। पदार्थका वास्तविक यथार्थ ज्ञान होनेसे लाभ और उलटा ज्ञान होनेसे नुकसान हो सकता है। कई लोग भ्रमसे हानिकारक पदार्थको उद्धारक समझते हैं और सत्य श्रेष्ठ उद्धारकको हानिकारक समझते हैं और फंस जाते हैं। यह उलटा ज्ञान है। मनुष्यको इस प्रकारकी विपरीत भावनासे बचना चाहिए।

केवल शब्दसे ही एक कल्पना प्रसृत होती है, परंतु वास्तवमें उस शब्दका वाच्य कोई पदार्थ नहीं होता। इस प्रकारके कल्पनामात्रको विकल्प कहते हैं। पारससे सोना होता है, ऐसा समझा जाता है। यहां पारस न होते हुए भी उसकी कल्पना लोगोंमें है। इसके भ्रमसे लोग फंसते हैं, मिथ्या मार्गसे गोते खाते रहते हैं। इसी प्रकार इस विषयकी और भी बातें देखनी होती हैं। मनुष्यकी सुंदरता, चेतनता, कुरूपता आदि शब्द हैं, परंतु मनुष्यसे भिन्न इनका अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार इस विषयमें समझिये।

निद्राका अनुभव सबको है। प्रत्येक प्राणी प्रति दिन निद्राका अनुभव लेता है। निद्राके समय अभावका प्रलय आता है। जागृतिमें जो दिखाई देता था, उस सबका उस अवस्थामें अभाव हो जाता है। परंतु जागनेके समय वह कहता है कि आहा ! " मुझे अच्छी नींद लगी थी, मैं अच्छी प्रकार सोया था।" अर्थात् निद्रामें भी जीवको एक प्रकारका अनुभव आता है। यह एक चित्तकी वृत्ति है।

पांचवी चित्तवृत्ति स्मृति है। अनुभव किये हुए विषयका स्मरण करना स्मृति कही जाती है।

उक्त प्रकारकी पांच वृत्तियां हैं। इनका हरएक मनुष्यको प्रतिदिन अनुभव

होता है। प्रत्येक मनुष्य इनसे प्रतिदिन काम लेता रहता है, इनसे बुरा भला उपयोग करता रहता है। इन पाचों वृत्तियोंको रोकनेका अभ्यास करना, इनको कुशलतापूर्वक रोकना, स्वाधीन रखना, योग है। इन वृत्तियोंके अधीन न होना, परंतु अपने अधीन इन वृत्तियोंको रखना योग है। चित्तवृत्तियोंके अधीन हो जानेसे अधोगति होती है और वृत्तियोंको अपने अधीन रखनेसे उन्नति होती है। प्रत्येक मनुष्य अपनी वृत्तियोंका विचार करेगा और उनको अपने स्वाधीन रखनेका प्रयत्न करेगा, तो उसको विदित हो सकता है कि वृत्तियोंको स्वाधीन रखनेसे कितना आत्मिक बल बढ सकता है। आत्माके अंदर बडीभारी शक्ति है, परन्तु चित्तवृत्तियोंके अधीन हो जानेसे आत्माकी शक्ति कम होती रहती है और इसीलिए चित्तवृत्तियोंके अधीन बना हुआ पराधीन जीवात्मा निर्बल और हताशसा होता है। परंतु जिस समय वह अपनी प्रभुताको जानता है और चित्तवृत्तियोंका निरोध करता है, उसी समय वह बडा शक्तिमान् बन जाता है। पराधीनतामें अशक्तता है और स्वाधीनतामें बलिष्ठता है। पराधीनताको दूर करना और स्वाधीनताकी प्राप्ति करना योग है।

अभ्यास और वैराग्यसे चित्तवृत्तियोंका निरोध हो सकता है। अपना इष्ट हेतु सिद्ध होनेतक प्रबल पुरुषार्थ श्रद्धाके साथ करनेका नाम अभ्यास है। वह अभ्यास बहुत कालतक लगातार और अच्छी प्रकार करनेसे लाभदायक होता है। चित्तकी वृत्तियोंको रोकनेका काम बडा विकट है, आसानीसे नहीं हो सकता। इस लिये बहुत समयतक प्रतिदिन दृढनिश्चयसे प्रयत्न होनेकी बडी भारी आवश्यकता है। यह काम थोडे दिनोंके अल्प प्रयत्नसे साध्य होनेवाला नहीं है। तथा अभ्यास करनेका मार्ग भी योग्य होना चाहिए, अन्यथा सबका बिगाड होना संभव है। इसलिये अनुष्ठानकी ठीक विधि जाननेकी अत्यंत आवश्यक्ता है।

विषयोंके भोग भोगनेकी जो तृष्णा होती है, उस तृष्णासे दूर रहनेका नाम वैराग्य है। विषयभोगकी इच्छाका दमन करना योग्य है। विषयभोगकी इच्छा प्रबल होनेसे चित्तकी वृत्तियाँ भडकने लगती हैं। इसलिये विषयभोगकी इच्छाका संयम करना उचित है। इस प्रकार निरंतर अभ्यास और भोगेच्छाका संयम, ये दोही उपाय हैं कि जिनसे चित्तकी वृत्तियोंका निरोध होता है और योग

साधन हो सकता है । इसलिये जो योगसाधन करना चाहते हैं, उनको उचित है कि इन दो उपायोंका विशेष ध्यान रखें । इन दो उपायोंके बिना योगसाधन करना अशक्य है।

विषयभोगकी तृष्णासे दूर रहनेका नाम वैराग्य है ऐसा ऊपर कहाही है । जब आत्माके स्वरूपको जाननेमें अभिरुचि बढ जाता है, आत्माके एक एक गुणमें प्रीति और भक्ति बढने लगती है, तब प्राकृतिक भोगोंसे मन हटता है और न, केवल प्राकृतिक विषय परंतु प्राकृतिक गुणोंके विषयमें भी आसक्ति छूटने लगती है । यह अवस्था आत्माके शक्तियोंका अनुभव आनेपर प्राप्त होती है, इसलिये इसकी श्रेष्ठता निःसंदेह है ।

निरंतर अभ्याससे और पूर्ण वैराग्यसे जब आत्माका अनुभव होने लगता है, तब उसको अपने आत्माके स्वातंत्र्यका अनुभव आने लगता है । यही योगसिद्धि का प्रारंभ है । इंद्रियोंसे अनुभव करने योग्य स्थूल पदार्थपर चित्तकी एकाग्रता करनेसे आत्माके अनुभवका किंचित्मात्र बोध होने लगता है इसको 'वितर्क अवस्था' कहते हैं । सूक्ष्म तत्त्वोंपर मनकी एकाग्रता करनेसे जो आत्माकी विविध सूक्ष्म शक्तियोंका अनुभव आने लगता है, उसको 'विचार अवस्था' कहते हैं । आत्माके आनंदस्वरूपका मनन और चिंतन करते करते जो एक अद्भुत हर्षमय अवस्था प्राप्त होती है, उसको 'आनंद अवस्था' कहते हैं । "देहादि सब स्थूल तत्त्वोंसे भिन्न स्वतंत्र ऐसा मैं आत्मा हूं मैं देहादिकोंको चलानेवाला हूं, मेरे अधीन मन आदि शक्तियाँ हैं, मैं उनके अधीन नहीं हूं" इस प्रकारके मनन और निदिध्याससे जो अपने स्वतंत्र अस्तित्वका अनुभव प्राप्त होता है, उसको 'अस्मिता अवस्था' कहते हैं । प्रारंभिक समाधीके ये प्रकार हैं और पहिलेसे दूसरा श्रेष्ठ है । इस समाधिको 'संप्रज्ञात समाधि' कहते है क्योंकि इसमें अपने अस्तित्वका ज्ञान होता है । 'मैं हूं मैं स्वतंत्र हूं, मैं आनंदका उपभोग लेता हूं' इस प्रकारकी भावना यहां रहती है, इसलिए यह प्राथमिक समाधि कही जाती है ।

इस प्राथमिक समाधिमें चित्तकी वृत्तियाँ एकाग्र होकर रहती हैं । परंतु चित्तकी वृत्तियोंका पूर्ण लय नहीं होता । इसलिये इससे भी ऊपर चढनेकी आवश्यकता

रहती है। चित्तवृत्तियोंके पूर्ण लयके अनुभवका अभ्यास करनेसे सबसे उच्च ऐसी एक अवस्था प्राप्त होती है कि जिस अवस्थामें केवल संस्कार मात्र शेष रहते हैं और सब अन्य रीतिसे अपनी केवल सत्ताका परम आनंद प्राप्त होता है। यहाँ चित्तकी वृत्तियोंके साथ इधर उधर भटकना नहीं होता है, परंतु केवल अपनीही शुद्ध अवस्थाका अनुभव होता है। यह अनुभव दूसरेकी अपेक्षासे नहीं होता, परंतु केवल अपनाही अपनेमें होता है। इसलिये इस अवस्थाका वर्णन शब्दोंसे कहा नहीं जा सकता। यह श्रेष्ठ समाधि है। इसीको प्राप्त करना योगका उद्देश्य है। मनुष्य जब इस समाधिको प्राप्त करता है, तब उसको संदेह नहीं रहता। जबतक तर्कसे वातोंको जानना होता है, तबतक ही संदेह होता है। तर्कसे परे अनुभवकी अवस्थामें संदेहका होना ही असंभव है।

यह उक्त अवस्था योगसाधनके विविध उपायोंसे प्राप्त होती है। साधारण जनोंके लिये यही राजमार्ग है। परंतु इस जगत्‌में ऐसे सत्पुरुष होते हैं कि जिनको उक्त उपायोंके विनाही समाधिकी अवस्था प्राप्त होती है। पूर्वजन्मार्जित सुकृतके कारण जन्मसेही उनके आत्मामें ऐसी विलक्षण शक्ति प्रदीप्त रहती है कि जिससे उनका आत्मा साधारण जनोंके समान इंद्रियोंका गुलाम नहीं रहता, परंतु उनका स्वामी बनकर रहता है। तथा सूचनामात्रसे उनका चित्त मूल प्रकृतिमें लीन होकर वे पूर्ण श्रेष्ठ समाधिका अनुभव लेने लगते हैं। जिनका योगाभ्यास पूर्वजन्ममें अधूरा रहता है उनको पूर्व अभ्यासका फल जन्मसेही प्राप्त होता है। अर्थात् किया हुआ सत्कर्म मृत्यु होनेसे भी व्यर्थ नहीं जाता है, यह नियम यहाँ सिद्ध होता है।

इन सत्पुरुषोंका विचार छोड दिया और साधारण जनोंकाही विचार किया, तो इन साधारण जनोंके लिए पूर्वोक्त उपायोंके साधनकाही मार्ग है। इस योग साधनके मार्गमें श्रद्धाकी सहायता अवश्य चाहिये। श्रद्धा न होनेसे योगमार्गका आक्रमण कदापि नहीं हो सकता। श्रद्धासे योगके साधनका अनुष्ठान करते करते विलक्षण बल प्राप्त होता है। यही आत्मिक वीर्य कहलाता है। इस आत्मिक वीर्यका अनुभव होते होते अपनी निज शक्तियोंकी स्मृति जागृत होती है और इस कारण प्रलोभनोंके उपस्थित होनेपर भी मन चंचल नहीं होता। क्योंकि

यह योगी अपनी शक्तियोंका स्मरण करता हुआ शत्रुभूत भावनाओंसे पराभूत नहीं होता। इस प्रकार अपनी शक्तियोंका अनुभव और स्मरण होनेसे उसमें आत्मामें एक प्रकारका आत्मविश्वास और विलक्षण समाधान उत्पन्न होता है। उसके चेहरेपरही इस समाधानका आनंद बाहरसे देखनेवालोंको दिखाई देता है, तथा उसकी बुद्धिकी ज्ञानशक्ति भी विलक्षण प्रभावशाली होती है। इसकोही ' प्रज्ञा ' कहते हैं। इसलिये इस अवस्थामें योगीको ' प्राज्ञ ' कहते हैं। साधारण जनोंकी उन्नति इस प्रकार होती है।

जो मनुष्य दृढ निश्चयसे और अचल निष्ठासे योगसाधन करने लगते हैं, उनको सिद्धि शीघ्र होती है। परंतु जो प्रतिदिन नहीं करेगा, वर्षानुवर्ष करता नहीं रहेगा अथवा योग्य रीतिसे नहीं करेगा, उसको योग्य सिद्धि नहीं मिल सकती। इसका कारण स्पष्ट है।

योगाभ्यास करनेवालोंके प्रयत्न साधारण, मध्यम और उत्तम होनेसे सिद्धि-भी वैसीही साधारण, मध्यम और उत्तम होती है। इस मार्गमें यही विशेषता रहती है कि जिसका जैसा प्रयत्न होता है, उसको ठीक वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है। जो कहते हैं कि ' ध्यान अथवा संध्या आदि करनेमें हमें आनंद नहीं होता, ' उनको यही कहना है कि उनकी रीति दोषयुक्त होती है। रीति निर्दोष होगी, तो सिद्धि अवश्य होती है।

ईश्वरकी भक्ति करनेसे समाधि शीघ्र ही साध्य होती है। जो ईश्वरकी भक्ति नहीं करते, उनको नाना प्रकारके विघ्न होनेके कारण सिद्धि होनेमें देरी होती है। तथा भक्तिके विना चित्तका विक्षेप भी होता है। इसलिये परमेश्वरकी दृढ भक्ति योगसाधनमें आवश्यक है।

क्लेश, कर्म, कर्मका फल और वासना ईश्वरमें नहीं होती। उसमें न्यूनता न होनेके कारण क्लेश नहीं होते, सदा तृप्त होनेके कारण अपनी इच्छाकी तृप्तिके लिये कर्म करनेकी जरूरत उसको नहीं होती। बुरे भले कर्म न होनेके कारण कर्मके भोग वहा नहीं होते। ' यह बात आज प्राप्त हो गई, अब कल दूसरी प्राप्त करूंगा, ' इस प्रकारकी वासना वहा नहीं है। इस प्रकारका सदा पूर्ण, आनंदघन, एकरस और सर्व प्रकारसे तृप्त और परिपूर्ण परमेश्वर है। इस

को पुरुष अथवा परमात्मा कहते हैं।

इस ईश्वरमें सब सद्गुणोंकी परमावधि रहती है। उससे कोई भी अधिक नहीं है। सबमें जो उत्तमता आती है, वह उसीसे आती है। सर्वज्ञानका वही परिपूर्ण भंडार है।

वह ईश्वर अनादि अनंत होनेसे सबका गुरु है। प्राचीनसे प्राचीन जो सत्पुरुष हो गये उनका भी वही गुरु था और भविष्यमें जो साधुसंत होंगे, उनका भी वही गुरु होगा। सब युगोंके सभी गुरुओंका वही सच्चा परम गुरु है।

प्रणव अर्थात् ॐ कार उसका वाचक शब्द है। प्रणवका जप और प्रणवके अर्थका मनन करना चाहिये। श्रद्धाभक्तिपूर्वक उक्त प्रकारसे ॐ कारका जप करनेसे समाधिकी सिद्धि होती है। इस प्रकार जप और मंत्रार्थकी भावना करनेसे आत्माके आंतरिक शक्तियोंका बोध होता है। जीवात्माका स्वरूपविज्ञान इसीसे होता है। शरीरसे जीवात्माका भिन्नत्व इसी उपायसे स्पष्ट ज्ञात होता है, तथा सब विघ्न दूर होते हैं। जहा परमेश्वरकी भक्ति होती है, वहा कोई विघ्न नहीं ठहर सकते। इस प्रकार परमेश्वर भक्तिकी श्रेष्ठता है। इसलिये हरएकको उचित है कि वह इस भक्तिके आश्रयमें अपनी उन्नतिका साधन करे।

---

३. विघ्नोंका विचार

यम, नियम आदि साधनों द्वारा हठयोग करनेसे शारीरिक और राजयोगद्वारा मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। परंतु निर्विघ्नतासे योगका साधन होना आवश्यक है। योगसाधन करनेके समय नाना प्रकारके विघ्न उत्पन्न हो सकते हैं। उनका यहाँ थोडासा विचार करेंगे।

शारीरिक विघ्न सबसे प्रथम देखने योग्य है। विविध प्रकारकी बीमारियाँ, नाना प्रकारके छोटे मोटे रोग, ज्वर, अजीर्ण, फोडे फुन्सियाँ आदि सब शारीरिक विघ्न हैं। इनके होते हुए कोई कर्म अच्छी प्रकार नहीं हो सकता। इसलिये रोगोंसे दूर होनेका यत्न करना आवश्यक है। उत्तम हवामें, उत्तम

स्थानमें, अच्छे मकानमें रहना, योग्य आरोग्यवर्धक भोजन करना तथा व्यायाम आदि करके, शरीरका स्वास्थ्य संपादन करना अत्यंत आवश्यक है।

मनकी उदासीनता दूसरा विघ्न है। कई लोग ऐसे होते हैं कि वे दिलसे किसी अच्छे कार्यको करना चाहते हैं, परंतु उनके मनकी अवस्था ऐसी कुछ रहती है कि वे चाहते हुए भी कुछ कर नहीं सकते। यह बडाभारी और भयानक विघ्न है। इस दोषके कारण कई बुद्धिमान् मनुष्य निरम्मे हो गये हैं। इसलिये इसको हटानेके लिये मनके अंदर उत्साही और स्फूर्तिके भाव रखने चाहिये।

अपनी शक्तिके विषयमें कइयोंको संशय रहता है। 'मैं इस कार्यको कर सकूंगा या नहीं?' इसी विषयमें ये लोग शंका करते करते ही समयको व्यतीत करते हैं। यह संशयी स्वभाव बहुत बुरा है। अपने बलका नाश इस संशयसे होता है। बलवान् भी संशयके कारण अत्यन्त निर्बल होता है, बुद्धिमान् भी निर्बुद्ध बनता है। 'जो अपने विषयमें संशय करते हैं, वे नाशको प्राप्त होते हैं,' ऐसा भगवान् श्रीकृष्णजीने अपनी गीतामें कहा है। इस प्रकार सबका नाश करनेवाला संशय है, इसलिये इसको दूर करना उचित है। निश्चय और दृढ विश्वासको समीप करनेसे सब प्रकारकी उन्नति सुसाध्य होती है।

संशयका दूसरा एक प्रकार है जिससे साधकके मनमें यह शंका उत्पन्न होती है कि 'जो कार्य अथवा उद्योग मैं कर रहा हूं, उससे मेरा उत्कर्ष होगा या नहीं।' इस प्रकारके संशयके कारण प्रारंभ किये हुए प्रयत्न परसे उसका विश्वास हट जाता है। इसलिए या तो उस कार्यको वह अच्छी प्रकार करनेमें असमर्थ हो जाता है, अथवा उसको छोडकर दूसरा, दूसरेको छोडकर तीसरा कार्य करने लगता है और अंततक किसी उद्योगको पूर्ण और योग्य रीतिसे निभा न सकनेके कारण उसका सर्वत्र नुकसान होता है। इसलिये साधकका साधनपर पूर्ण विश्वास चाहिए। सब प्रकारकी साधनसामुग्री उपस्थित होनेपर भी संशयके कारण मनुष्य कृतकार्य नहीं हो सकता। इसलिए संशयको दूर करना उचित है।

गलतियाँ और अशुद्धियाँ करनेका स्वभाव कइयोंमें इतना होता है कि उसी कारण उनसे साधारण कार्य भी ठीक प्रकार पूर्ण नहीं हो सकते। इसलिये सबको

उचित है कि वे दक्षताको धारण करके, बिना अशुद्धि करते हुए, हरएक कार्य करनेका अभ्यास किया करें। उद्योग छोटेसे छोटा हो अथवा बडेसे बडा हो, अपनी ओरसे ऐसी खबरदारी रखनी चाहिये कि उनके करनेके समय किसी प्रकार भी कोई गलती न हो सके।

आलस्य बडाभारी विघ्न है। आलसी मनुष्य किसी कार्यके लिए योग्य नहीं है। इस जगत्में आलसी मनुष्य किसी बातमें उन्नति नहीं प्राप्त कर सकता। अपनी उन्नति करनेके लिये तथा दूसरोंपर उपकार करनेके लिये उद्योगी स्वभावकी बडीभारी आवश्यकता है। इसलिये आलस्यको दूर करके पुरुषार्थी और उद्यमी स्वभावको प्राप्त करना उचित है। आलस्य ही मनुष्यमात्रका सच्चा शत्रु है, इससे जगत्का जितना नाश और घात हो रहा है, उतना किसी अन्य शत्रुसे नहीं। आलस्य एक प्रकारका संसर्गजन्य रोग है। आलसी मनुष्योंके साथ रहनेसे मनुष्य आलसी बन जाता है। इसलिये सबको उद्यमशील पुरुषोंकी ही संगति करना उचित है।

कई लोग ऐसे होते हैं कि वे आवश्यक कार्य तो करेंगे नहीं, परंतु अन्यही कर्मोंमें अपना सब समय लगाएंगे। इस स्वभावसे बडी विपत्ति आती है। क्योंकि उनसे आवश्यक कार्य नहीं होते, इसलिये योग्य प्रगति नहीं हो सकती और अनावश्यक कर्मोंमें सब शक्तिका ह्रास होनेके कारण उनको किसी प्रकार भी लाभ हो ही नहीं सकता। इसलिये जो अवश्य कर्तव्य बातें होती हैं, उनको करनेके लिये ही अपनी सब शक्तिका व्यय करना उचित है।

मनके अंदर भ्रम उत्पन्न होना भी एक बडाभारी विघ्न है। भ्रांत मनुष्य न तो अपने विचार दूसरोंको ठीक प्रकार कह सकता है, न दूसरोंका कहा हुआ उपदेश ठीक प्रकार ग्रहण कर सकता है। किसी कार्यको करनेके समय भ्रांति उत्पन्न होनेसे उस कार्यका ठीक प्रकार बननाही असंभव है। इसलिये योगसाधन करनेवालोंको उचित है कि वे मनके भ्रमको दूर करें। भ्रांतिसे हर प्रकारका मनुष्यका नुकसानही है।

प्रयत्न करनेपर भी कइयोंकी योग्य प्रकारसे उन्नति नहीं होती। अर्थात् जिस रीतिसे मनकी एकाग्रता आदि होनी चाहिये उस रीतिसे नहीं होती है। यह एक बडा भयानक विघ्न है। तथा चित्तकी एकाग्रता किंचिन्मात्र होनेपर भी

अधिक देरतक नहीं ठहरती। सिद्धिका केवल भास मात्र हो जाता है। इससे कर्त्योंकी अधिक प्रगति नहीं होती। इसके लिये विविध प्रकृतियोंके अनेक कारण होंगे। जो जिसके पास विघ्नरूप कारण होगा, उसको दूर करनेका अवश्य यत्न होना उचित है। अन्यथा कार्यकी सिद्धि कभी नहीं होगी।

ये सब विघ्न हैं। इनके कारण अवनति होती है। सब पुरुषार्थी मनुष्योंको उचित है कि वे इन शत्रुओंको दूर करनेका उपाय अवश्य करें। जबतक इनमेंसे एक भी रहेगा, तबतक कोई सिद्धि नहीं प्राप्त होगी। अब इन शत्रुरूप विघ्नोंके साथियोंका विचार करेंगे।

दुःख करनेका स्वभाव भी उक्त शत्रुओंका एक साथीदार है। कई लोग ऐसे होते हैं कि जो सदा रोते रहते हैं। सर्दी पडी तो भी रोते हैं और धूप निकली तो भी रोते रहेंगे। इनको वृष्टिसे भी कष्ट होते हैं और निर्जल प्रदेशमें भी इनको दुःख है। वास्तवमें ऐसे लोगोंके लिये यह जगत् नहीं है। इस जगत्को और दुःख के भावसे देखना उचित नहीं है। यदि अभ्यास किया जायगा तो हरएक अवस्थामें मनुष्य प्रसन्नचित्त रह सकता है। सदा आनंदित वृत्ति रखनेका अभ्यास करना उचित है। इस प्रकारकी वृत्ति रखनेसे बडा आनंद और उत्साह स्वयं उत्पन्न होता है। प्रत्येक पुरुषार्थ योग्य रीतिसे करनेके लिये मनुष्य योग्य बनता है।

कई लोगोंका मन सदा उदास रहता है। यह दुर्मनकी वृत्ति भी बडी बुरी है। इस प्रकारके मनके कारण मनुष्य शक्तिहीन होता है। अपनी इच्छाका थोडासा प्रतिरोध हुआ तो इनका मन क्षुब्ध हो जाता है। ऐसे उदासवृत्तिवाले लोगोंसे कोई पुरुषार्थ ठीक नहीं हो सकता। इन उदासवृत्ति लोगोंको फूलोंको और देखनेसे भी आनंद नहीं होता, बालकोंकी प्रसन्न वृत्तिसे इनका चित्त प्रसन्न नहीं होता, पहाडों और वनोंके सुन्दर दृश्योंसे इनके मनोंपर उदात्त परिणाम नहीं होता और न इनको प्रातःकाल और सायंकालके रमणीय दृश्य आनंद दे सकते हैं। उदासीनताका अंधेरा इनके मनपर छाया हुआ रहता है, जिस कारण योगसाधनके योग्य उत्साही प्रसन्नवृत्ति इनको प्राप्त नहीं होती। ये सदा हताश होकर सब पुरुषार्थोंसे पीछे हटते हैं और उद्यमहीन होनेसे अधोगतिको जाते हैं। इसलिये योगसाधन करनेवाले मनुष्योंको चाहिये कि अपने अपने दुर्मनताके भावको सदा दूर रखें और उत्साहपूर्ण प्रसन्नता सदा अपने साथ रखें।

कई मनुष्योंके शरीरमें कंप होता है। शरीर थोडेसे श्रमसे कांपने लगता है। इससे भी चित्तवृत्तिकी एकाग्रता नहीं हो सकती और समाधि प्राप्त होनेमें बडा विघ्न उत्पन्न होता है। कोई साधारण कार्य भी इससे ठीक प्रकार नहीं हो सकता, क्योंकि अवस्थामें स्थिरता ही नहीं रहती। जब शरीर कांपने लगता है, तब मन भी बडा चंचल होता है। इसलिये इंद्रियों, अवयवों और अंगोंमें स्थिरता प्राप्त करनेका अभ्यास करना आवश्यक है।

कई लोगोंकी प्राणधारणशक्ति कमजोर होती है। जब श्वास अंदर लिया जाता है, तब वह वहां स्थिर नहीं रहता, रोकनेपर भी स्वयं बाहिर निकलने लगता है। तथा उच्छ्वास बाहर निकलनेपर फिर एकदम अंदर घुसने लगता है। फेफडोंकी कमजोरीके कारण कइयोंको ऐसा होता है। इससे प्राणायामका अभ्यास ठीक प्रकार होनेमें बडा भारा विघ्न होता है। इसलिये इस कमजोरीको दूर करनेका प्रयत्न होना आवश्यक है।

ये सब विघ्न, कष्ट और दोष हैं। इनके और भी अनेक भेद हैं। उनको पाठक विचार करनेसे जान सकते हैं। इनको दूर करना चाहिये। इनके दूर होनेके विना मनुष्यकी योग्यता उच्चतर नहीं हो सकता। इसलिये एक एक तत्त्वका अभ्यास करके उस उस दोषको दूर करना आवश्यक है। जैसे किसीका शरीर रोगा होगा, तो उसको आवश्यक है कि वह अपने शरीरके तत्त्वका ठीक प्रकार अभ्यास करे और उसको निरोग रखनेके नियमोंको जाने अथवा किसीकी आंख बडी कमजोर है तो उसके लिये वह अपनी दृष्टि स्थिर करनेका अभ्यास शनै शनै करे। इस प्रकार दृढनिश्चयपूर्वक अभ्यास करनेसे उक्त दोष दूर होते हैं। उक्त सब दोष हरएकमें नहीं होते, कोई दोष किसीमें और कोई किसीमें होता है। जो दोष जिसमें हो, उसको उचित है कि वह उसीके निवारण करनेमें सहायता देनेवाले तत्त्वका अभ्यास शनै शनै और दृढ निश्चयसे करता रहे। थोडेही समयमें उसका दोष दूर होगा और उसका चित्त शांत और प्रसन्न होने लगेगा। परंतु यह सब सुसाध्य होनेके लिये परमेश्वरकी भक्ति करना उचित है। परमेश्वरपर दृढ और पूर्ण विश्वास रखना चाहिये और मनमें दृढ संकल्प रखना चाहिये कि ' सर्वमंगलमय परमेश्वर अपनी अपार दयासे सर्व विघ्नोंको दूर करेगा, और उसकी भक्तिसे मैं योग्य बनकर संपूर्ण योगकी सिद्धि प्राप्त कर सकूंगा। '

तात्पर्य परमेश्वरकी भक्तिसे सब संकट दूर हो जाते हैं। परमेश्वर सर्वमंगलमय होनेसे जब भक्तिसे उनका ध्यान किया जाता है, तब उसकी सर्वमंगलमयता उपासकके मनमें शनैः शनैः आने लगती है और इस कारण उसके सब दोष दूर होने लगते हैं।

और भी उपाय हैं जो साथ साथ करने योग्य हैं। जो बडे प्रसन्नचित्त, आनंदवृत्ति और उत्साहपूर्ण लोग होते हैं, उनकी संगतिमें रहना, उनका चालचलन देखना, ऐसे पुरुषोंके व्यवहारोंका निरीक्षण करना, ऐसे लोगोंके संघोंमें रहना, शरीरसे नीरोग, अवयवोंसे बलवान्, मनसे तेजस्वी, चित्तसे प्रसन्न, बुद्धिसे चतुर और आत्मामें उत्साह धारण करनेवाले जो होंगे उनसेही मैत्री करना उचित है। अपने शरीर आदिको दुःख होनेपर जैसे कष्ट होते हैं, वैसेही सब प्राणिमात्रको होते हैं, ऐसी मनमें भावना रखकर दुःखितोंपर दया करना, दुःखी लोगों और प्राणियोंके कष्ट दूर करनेके लिये सदा तत्पर रहना, अपने काया, वाचा, मन और धन आदिसे दूसरे दुःखितोंके दुःख दूर करनेका यत्न करना, स्वयं दुःखोंसे न डरते हुए दूसरोंके दुखोंको दूर करना और ऐसे समय जो अपने शरीर आदिको कष्ट होंगे, उनको आनंदसे हंसते हुए सहन करना, यह बडा भारी योग है। इस अभ्याससे चित्तकी ऐसी अवस्था होती है कि कितना भी दुःख प्राप्त होनेपर मन बडा प्रसन्न रहता है। यही एक प्रकारका भारी तप है। दूसरोंके दुःख स्वयं अपने आपपर लेने और दूसरोंको सुखी करनेके अभ्याससे मन बडा दृढ हो जाता है। सदाचारी, श्रेष्ठ धर्मात्मा लोगोंकी उन्नति देखकर, उनके साथ ईर्ष्या, द्वेष न करते हुए, उनका प्रसन्नताके साथ अभिनंदन करना। मनमें ऐसा विचार धारण करना कि ' मैं भी ऐसा महात्मा और धर्मात्मा बनूंगा और श्रेष्ठ हो जाउंगा। ' कई लोग दूसरोंकी उन्नति देखकर उन श्रेष्ठ पुरुषोंका द्वेष करने लगते हैं और गिर जाते हैं। दूसरोंके उदयसे आनन्दित होना चाहिये, न कि ईर्ष्यालु।

जो लोग दुराचारी होते हैं उनका विचारही छोड देना उत्तम है। दुष्ट दुराचारी लोगोंका स्मरण करनेसे दुष्टताकी कल्पना मनमें आती है और मनुष्यका मन दूषित होता है। इसलिये इन दुष्टोंके साथ उदासीन वृत्तिसे रहना योग्य है।

दुष्ट दुराचारी लोगोंके समीप आनेसे उनका द्वेष न कीजिये और उनके दूर होनेमें आनंद न मानिये। किसी प्रकार भी उनका विचार न कीजिये। अर्थात् इस जगत्में दुराचारी लोग हैं, यह विचार भी आपके मनमें न आवे, ऐसी व्यवस्था कीजिये।

इस प्रकार करनेसे चित्तकी प्रसन्नता होती है। चित्तकी वृत्तियोंका क्षोभ होने से बड़ा कष्ट होता है। इस कष्टकी निवृत्ति करनेके लिये ऊपर कहे अनुसार व्यवहार करना उचित है। मनकी चंचलताको रोकना चाहिये। दुःखसे अथवा सुखसे मनकी चचलवृत्ति होती है। दुःख होनेकी अवस्थामें तथा सुख होनेकी अवस्थामें मन शांत और प्रसन्न रखनेका अभ्यास करना चाहिये। ऐसे अभ्यास होनेसे मन बड़ा दृढ बन जाता है और उस कारण आत्मामें प्रसन्नता सदा स्थिर रह सकती है। इसलिये इन बातोंका अवश्य विचार करना उचित है।

४. तपका अभ्यास

योगसाधन करनेकी इच्छा जो लोग धारण करते हैं, उनको शीत उष्ण आदि द्वंद्वोंको सहन करनेका अभ्यास करना उचित है। आजकलके फैशनके कारण सदा सर्वदा कपडे शरीरपर धारण किये जाते हैं, इससे सर्दीगर्मी सहन करनेका शरीरका अभ्यास कम हो गया है। हवामें थोडीसी उष्णता होनेसे शरीरको कष्ट होता है और थोडीसी सर्दी लगनेसे ज्वर आदि आनेका भय उत्पन्न होता है। यह अवस्था दूर करना अत्यंत आवश्यक है।

शीत जलसे स्नान करनेके अभ्याससे न केवल शरीरका और मनका उत्साह बढता है, परंतु सर्दीके कारण उत्पन्न होनेवाले बहुतसे रोग दूर हो जाते हैं। बारंबार जुकाम आदि होनेसे जो कष्ट होते हैं, वे सब कष्ट इस अभ्याससे दूर होते हैं।

कोई अभ्यास करना हो, तो शनैः शनैः करना आवश्यक है। अन्यथा बडी हानि

हो सकती है । जो लोग बडी समृद्धिमें पले हुए होते हैं, गर्म पानीसे स्नान करनेका जिनको अभ्यास होता है, नरम नरम कपडोंमें लिपटे रहनेका अभ्यास जिनको बालपनसे होता है उनको उचित है, कि वे प्रथम योगसाधन करनेका मनसे पूर्ण निश्चय करें और शनैः शनैः सर्दी और उष्णता सहन करनेका अभ्यास बढाते जावें । शीघ्रता करनेसे कोई लाभ नहीं होगा । शनैः शनैः अपना अभ्यास बढानेसे सब कुछ योग्य समयमें साध्य हो सकता है ।

उष्ण उदकसे स्नान करनेवाले जो होंगे, उनको उचित है कि आहिस्ते आहिस्ते थोडा थोडा उष्णताका प्रमाण कम करें और २-३ महीनोंमें शीत जलका स्नान प्रारंभ करें । उष्ण उदकसे स्नान करनेसे प्राणायाम करनेके समय बडे कष्ट होते हैं । इसलिये शीतोदकसे स्नान अच्छा होता है । क्योंकि शीत उदकके स्नानसे शरीरके (Nerves) ज्ञानतंतुओंमें बडी चेतनता उत्पन्न होती है और धैर्यमें स्थिरता और शांतता प्राप्त होती है । इसलिये इसका अभ्यास करना उचित है।

परंतु कई लोग ऐसे अविचारी होते हैं कि जो अपने शरीरके बलका कोई विचार न करते हुए, अविचारसे ही एकदम ठंडे पानीका स्नान प्रारंभ कर देते हैं । इस प्रवृत्तिसे बडा नुकसान होता है । शीतजलस्नानका अभ्यास शनैः शनैः करनेसे बडा लाभ होता है; परंतु अविचार करनेसे भयानक परिणाम हुआ करता है ।

इसी प्रकार उष्णताका सहन करनेका अभ्यास भी बढाना चाहिये । खुले जगमें थोडी देर धूपमें भ्रमण करनेसे इसका अभ्यास हो जाता है । इस प्रकार करनेसे शरीरका तेज और आरोग्य बढता है तथा नीरोगता प्राप्त होनेमें सहायता होती है । क्योंकि सूर्यप्रकाश ही सबका आरोग्यवर्धन करनेवाला है ।

जो लोग सदा शरीरपर कपडे धारण करते है उनको उचित है, कि वे प्रतिदिन अपनेको ' आतप-स्नान ' अर्थात् धूपमें खडे रहनेका अभ्यास किया करें। शनैः शनैः अभ्यास करनेसे इससे बहुत लाभ होता है । जो लोग केवल बंद मकानोंमें बैठे रहते हैं, उनको इस अभ्याससे अपूर्व आरोग्य प्राप्त हो सकता है ।

शीत उदकसे स्नानका अभ्यास प्रथम करना हो तो उष्णताकी ऋतुमें करना उचित

है, तथा आतप-स्नानका प्रारंभ करना हो तो साधारणतया जिसमें सर्दी गर्मी बहुत नहा होती, ऐसे समशीतोष्ण कालमें करना उचित है।

शरीरको थोडा कष्ट सहन करनेका अभ्यास भी करना चाहिये। चलना, फिरना, व्यायाम करना, दौडना, तैरना आदि प्रकारके अभ्याससे शरीर स्वाधीन करना चाहिये। आसनोंके अभ्यासके लिये चपल शरीर होनेसे सुभीता होती है। स्थूल शरीर होनेसे बडे कष्ट होते हैं। जिनका पेट बहुत बडा होता है, उनको उचित है कि वे सबसे पहिले अपने पेटको कम करनेका अभ्यास करें। बडा हुआ पेट मृत्युका घरहीं बन जाता है। योगके आसनोंमें पेटको ठीक करनेवाले भी बहुतसे आसन होते हैं। तात्पर्य, शरीरमें चपलता रखना चाहिये।

अति भोजन करना कदापि उचित नहीं, तथा बहुत उपवास करना भी योग्य नहीं। तथापि सप्ताहमें अथवा पंद्रह दिनोंमें एकाध दिनका लंघन करना आरोग्य दायक होता है। यदि लंघन न हो सके, तो उस दिन अथवा उस समय लघु आहार, दुग्ध आहार, अथवा फल आहार करनेका अभ्यास करना योग्य है। दिनमें दो वारही भोजन करनेका अभ्यास करना चाहिये। परंतु जो एक-भुक्त रहते हैं, उनका अभ्यास सबसे उत्तम है। परंतु जो दिनमें पाच पाच छे छे वार खाते रहते हैं, उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। इसलिये खानपानके विषयमें अपनी प्रकृतिके अनुसार योग्य नियम करना उचित है। योगसाधन कितना भी किया जाय और भोजनका अनियम हो, तो साधन निष्फल हो जाता है। इसलिये भोजनके विषयमें योग्य नियम रखना उचित है।

इसी प्रकार निद्रा, आराम और व्यायाम आदिके भी योग्य नियम करके उनके अनुसार चलनेका अभ्यास करना चाहिये। अनियम होनेसे योगका साधन नहीं हो सकता। अतिनिद्रा किंवा अति जागरण बहुत बुरा है। अतिनिद्रासे सुस्ती चढती है और अति जागरणसे खुष्की बढती है। इसी प्रकार बहुत आराम लेनेसे प्रकृति आलसी बनने लगती है और बिलकुल आराम न करनेसे आरोग्य स्थिर नहीं रह सकता। बहुत व्यायाम करनेसे हृदय आदि अवयव क्षीण होते हैं और बिलकुल व्यायाम न करनेसे शरीर शिथिल होता है। तात्पर्य,

ऐसा अभ्यास करना चाहिये कि जिससे थोडे कष्ट सहन करनेका तथा शीत उष्ण सहन करनेका अभ्यास शरीरको होवे । नाजुक, कोमल, सुखाभिलाषी प्रकृतिवाला शरीर नहीं बनाना चाहिये । जो अपने शरीरको सुकुमार और बहुत सुखाभिलाषी बनाते हैं, उनसे कोई नहीं कार्य हो सकता । इसलिये श्रम करनेका अभ्यास करना आवश्यक है । सुखाभिलाषी शरीरसे योगसाधनका दृढ अभ्यास नहीं हो सकता ।

इस प्रकारका सहनशक्तिसे युक्त शरीर बनानेका अभ्यास करना ही 'तप' है। शारीरिक तप अवश्य करना चाहिये । खीलोंके फट्टेपर बैठना अथवा उलटे होकर धूम्रपान आदि करनेकी कोई आवश्यकता नहीं । आसुरी स्वभाववाले लोग अपने हाथोंको ऊपरही रखकर सुखाते हैं और इस प्रकारके विविध प्रकार करते हैं । परंतु इस प्रकार आसुरी उपाय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ।

शहरमें अपने योग्य घरमें रहते हुए ही योगका आचरण हो सकता है । और जो प्रकार ऊपर दिये हैं, उन योग्य प्रकारोंको शनै शनै करनेसे तपका सब आवश्यक अभ्यास हो जाता है । दयालु परमेश्वरने इस शरीरमें ऐसे गुणधर्म रखें हैं कि इस शरीरको जैसा रखनेका अभ्यास किया जायगा वैसा ही शरीर बन जाता है । परमेश्वरकी यही बडी भारी दयालुता है । आप यदि शरीरको बडा नाजुक बनायेंगे, तो यह बडा ही नाजुक बन जायगा । तथा यदि आप इसको हट्टाकट्टा बनायेंगे तो यह हट्टाकट्टा बन जायगा । शरीर बडा सुकुमार और नाजुक होनेसे यहां तक अवस्था आ जाती है कि थोडीसी हवा सर्द हो गई, तो इसको सर्दी होने लगती है और थोडीसी उष्णता हो गई तो इसको असमाधान होने लगता है । इस प्रकारके नाजुक प्रकृतिके मनुष्योंसे न तो योगसाधन होगा और न कोई अन्य कर्म हो सकता है । न ये दीर्घ आयुष्य प्राप्त कर सकते हैं और न इनको अपने मनकी शक्तियोंका विकास करनेका अधिकार प्राप्त हो सकता है । इसलिये तप करनेका अभ्यास आवश्यक है ।

कष्ट सहन करने योग्य दृढ शरीर बनानेकी सब विधियाँ तपके अंदर आ जाती हैं । तप यही है और यह नहीं है, ऐसा कहना बडा कठिन काम है । जो एकको

तप हो सकता है, वह दूसरेके लिये वैसा नहीं हो सकता, इसलिये तपका विचार बडा सूक्ष्म है। जो कभी धूपमें भ्रमण नहीं करते उनको दस मिनिट धूपमें नंगे शरीर रहना बडा ही तप हो सकता है, परंतु जो धूपमें भ्रमण करते रहते हैं, उनको घण्टाभर धूपमें रहना कोई बडी बात नहीं है। इसी प्रकार अन्य विषयमें समझ लीजिये। यही कारण है कि तपकी सामान्य कल्पना कही जा सकती है, परंतु उसके बारीक भेदोंका वर्णन करना असंभव है।

हरएक अपनी परिस्थितिके अनुसार अपने लिये कौनसा तप करना योग्य है और कौनसा नहीं, इसका विचार कर सकता है और इसीलिये हम यहाँ अधिक कुछ भी न लिखते हुए इतनाही कह देते हैं कि देश, काल, ऋतु, अवस्था आदि सारी परिस्थितिके अनुसार जो जिसके लिये योग्य तप हो सकता है, वह तप वहाँ उसको करना चाहिये और उसके आचरणसे अपने शरीरकी कार्यक्षमता बढानी चाहिये। करनेवालेका निश्चय दृढ होनेसे सब कुछ हो सकता है और दृढ निश्चयके अभावमें कुछ भी नहीं बन सकता।

तपके लिये इंद्रियोंकी लालसा कम करना आवश्यक है। जिह्वा मीठे मीठे पदार्थ खाना चाहती है। परंतु इस प्रवृत्तिसे, अर्थात् बहुत मीठे पदार्थोंके अधिक खानेसे शरीर सब प्रकारसे रोगी होता है। इसी प्रकार अन्य इंद्रियोंके विषयमें सुज्ञ पाठक जान सकते हैं। सभी इंद्रियोंको अपने अधीन रखनेका अभ्यास शनैः शनैः करना चाहिये। यद्यपि यह अभ्यास बडा कठिन है, तथापि थोडा थोडा प्रयत्न इस दृष्टिसे होना आवश्यक है।

परोपकारके श्रेष्ठ कर्म, श्रेष्ठ सत्पुरुषोंका सहाय्य करनेमें तत्परता तथा सब शुभ कर्म करनेमें ही अपने शरीरका अर्पण करना चाहिये। यदि शरीरको कष्ट सहन करनेकी शक्ति न होगी, तो उससे श्रेष्ठ पुरुषार्थ नहीं हो सकेंगे और श्रेष्ठ पुरुषार्थ न होनेके कारण उस पुरुषकी योग्यता उच्च नहीं होगी। इसलिये उन्नतिकी इच्छा करनेवाले सज्जनोंको उचित है कि वे अपने अंदर तपके द्वारा सहनशक्तिकी वृद्धि करें।

पूर्वोक्त लेखका मनन करनेसे शारीरिक तपकी कल्पना पाठकोंके मनमें ठीक प्रकार हो सकती है। जो बातें इस लेखमें स्पष्ट रूपसे कहीं नहीं हैं, उनको भी

विचारसे सोचकर पाठकोंको जानना चाहिये। क्योंकि मनुष्य विभिन्न परिस्थितिमें रहते हैं और सबको अपनी परिस्थितिमें रहकर ही उन्नतिका साधन करना चाहिये। हरएक परिस्थितिमें तपकी भिन्नता होनेके कारण स्पष्ट रूपसे तपके नियम लिखना सर्वथा असंभव है। शरीरकी द्वंद्वसहनशक्ति बढाना तपका मुख्य उद्देश है। वह जिस रीतिसे साध्य होगा, उस रीतिका अनुसरण करना चाहिये।

यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि साधारण योग स्त्रीपुरुषोंके लिये समानही है। यद्यपि यहाँ 'मनुष्य' आदि शब्द लिखे जाते हैं, तथापि उनका यह आशय कदापि नहीं कि योगसाधन करना स्त्रियोंके लिये वर्जित है। "योगसाधन करनेसे और विशेषतः विशिष्ट प्रकारके आसन आदि करनेके अभ्यास से स्त्रियोंके शरीरोंपर यह अनुभव देखा है कि उनके अनेक रोग दूर हो जाते हैं, प्रसूतिके समयका भय और कष्ट दूर होता है और आरोग्यपूर्ण प्रसन्नता प्राप्त होती है।" योगमें कई ऐसे प्रकार हैं कि जो केवल पुरुषोंको ही करना उचित है और कई ऐसे प्रकार हैं कि जो केवल स्त्रियोंके लिये ही योग्य हैं। इनको छोडकर बहुतसा योगका हिस्सा ऐसा है कि जो दोनोंको समान है। आगेके लेखोंमें सुबोध रीतिसे इन सब बातोंको क्रमशः हम लिखेंगे। यहाँ केवल इतनाही बताना है कि तप आदि प्रकार जैसे पुरुषोंको वैसे स्त्रियोंको भी अपनी स्थिति और अवस्थाके अनुसार अवश्य पालन करने चाहिये। प्राचीन कालमें पुरुष और स्त्रियाँ भी डेढ डेढ सौ वर्षकी आयु योगाभ्याससे प्राप्त करती थीं। परंतु आजकल वह सब अभ्यास बंद हो गया है और आयु, आरोग्य और बल कम हो रहा है। पुरुषार्थ करनेपर पूर्वके समान अब भी आयु, आरोग्य और बल प्राप्त किया जा सकता है। केवल प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है। यदि पाठक अपने पास दृढ निश्चय और योगके साधनपर विश्वास रखेंगे, तो वे अपनी उन्नति अपनी आखोंसे ही देख सकते हैं। अस्तु।

यहाँतक शरीरके तपकी सामान्य कल्पना लिखी है। अब थोडासा वाचा और मनके तपके विषयमें लिखना आवश्यक है। सत्य बोलनेका निश्चय करना, कदापि जान बूझकर असत्य न बोलना, वाणीका तप है। असत्य बोलनेमें किसी समय लाभ होनेकी संभावना भी हो गई, तो भी असत्य बोलना उचित नहीं। इस

अभ्याससे वाणीके अंदर एक प्रकारका वीर्य और तेज उत्पन्न होता है। वह तेज झूटमूठ बोलनेवालेके अंदर नहीं हो सकता। बहुत लोग साधारण अवस्थामें सत्य बोलते ही रहते हैं। साधारण अवस्थामें सत्य बोलना कोई कठिन कार्य नहीं है। जहाँ विशेष प्रलोभनका प्रसंग आ जायगा, वहाँ सत्यके आग्रहसे अपना वक्तृत्व करना बडा निश्चयका कार्य है। जो ऐसा करता है, उसकी वाणीमें ही उक्त तेज बढ जाता है। योगीकी वाणीमें जो सिद्धि प्राप्त होती है, वह इसी अभ्याससे होती है।

सत्य बोलना चाहिये ऐसा कहनेसे कोई ऐसा न समझे कि अनावश्यक सत्य बोला जाय। अर्थात् ' किसीका नाक टेढा है। ' यह सत्य है, परंतु इसको वार वार कहनेसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, परंतु उसको जिसका कि नाक टेढा होता है, बडा कष्ट होता है; इसलिये इस प्रकारका विना-कारण कष्ट उत्पन्न करनेवाला सत्य बोलनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। किसीका भला नहीं हो सकता, किसीकी उन्नति नहीं हो सकती और सुननेवालेको उद्वेग हो सकता है, ऐसा भाषण करना उचित नहीं है। बोलनेका ढग प्रिय हो तथा बोलनेका तात्पर्यका परिणाम हितकारक हो, इस भाँति सत्य, पवित्र और उच्च विचारोंसे परिपूर्ण भाषण करना चाहिये।

दूसरेके छिद्र, व्यंग, दोष, हीन आचार विचार, आदिके वर्णन करनेका तथा व्यर्थ उपहास करनेका अभ्यास कइयोंको होता है। इस अभ्याससे वाणी मलिन होती है, इसलिये पाठकोंको उचित है कि वे शीघ्रही इस प्रकारके भाषणसे दूर रहनेका यत्न करें। जो सज्जन योगाभ्यास करना चाहते हैं, उनको अपने शब्द निश्चयसे पूर्ण और खुले हुए तथा पवित्र भावसे युक्त बोलनेका अभ्यास करना चाहिये। वाक्सिद्धिका यही बीज है। जो इसको यथावत् जानेंगे और प्रयत्नसे योग्य शब्दप्रयोग करनेका अभ्यास सावधानताके साथ करेंगे, उनको ही इसकी सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

पठनपाठन करनेके विषयमें भी विशेष सतर्क बनाना चाहिये। जो मर्जी आवे पुस्तक पढना नहीं चाहिये। आजकल अखबार, मासिकपत्र अथवा पुस्तक

छापने और बेचनेके लिये किसीका कोई प्रतिबंध नहीं है, इसलिये न केवल अपने देशमें परन्तु सर्वत्र हीन विचारके पुस्तक बहुत बढ रहे हैं। इसलिये पाठकोंको उचित है कि वे अपने लिये ऐसेही पुस्तक पसंद करें, कि जिनके पढनेसे अपने पास पवित्र विचार बढ सकते हैं। अपने विचारोंका प्रदर्शन वक्तृत्वसे हो सकता है और अध्ययनसे अपनेमें सुविचारोंका संवर्धन हो सकता है। इसलिये जैसी भाषण करनेके समय खबरदारी रखना उचित है, ठीक उसी प्रकार पठन और श्रवणके विषयमें भी सावधानता रखना योग्य है। अपने अंदर योग्य सुविचार बढाने चाहिये और अपने मुखसे सुविचारोंका ही फैलाव करना चाहिये।

इसलिये वेदोंका स्वाध्याय प्रतिदिन करना आवश्यक है। जो ऐसा नहीं करेंगे उनकी वाणीका वीर्य बढ नहीं सकता और वाणीकी सिद्धिसे वे वंचित रहेंगे। वेदका स्वाध्याय करनेका निश्चय करना आवश्यक है और प्रतिदिन कमसे कम एक मंत्र नित्य मनन करनेके लिये रखनेसे बहुत लाभ हो सकता है। मंत्रके अंदर जो आशय रहता है, उस भावनासे मन परिपूर्ण रखना आवश्यक है। इस प्रकार तप और स्वाध्याय करनेसे बडा लाभ होता है।

शरीर, इंद्रिय, वाणी आदिके विषयमें थोडासा ऊपर कहा है। अब मनके तपके विषयमें थोडासा कहना आवश्यक है। मनके अंदर शुभ भावना रखनेका प्रयत्न होना चाहिये। मन बडा चंचल है, इसलिये यह होना कठिन है, इसमें कोई संदेह नहीं, तथापि इस दिशासे प्रयत्न होना चाहिये। जिस समय अपने मनमें बुरा विचार आ जाय, उसी समय मनको कहना चाहिये कि " हे मन! तू इस प्रकार अयोग्य विचार न कर, मैं तुझको स्वतंत्र भटकने नहीं दूंगा। तुझको शुभ विचारोंमें ही स्थिर रहना चाहिये। " आपका मन जिस समय भटकने लगेगा, उस समय आप उसको उक्त प्रकार कहते जाइये और उसको अपना पूर्ण निश्चय बताइये। मनको अपनेसे अलग मूर्तिमान् समझकर आप उससे बातचीत कीजिए। जैसी आप अपने नौकरको आज्ञा करते हैं, उसी प्रकार आप अपने मनसे कहते जाइये। प्रथमतः आपको यह कथन उपहास रूप प्रतीत होगा, परंतु यदि आप अनुभव लेंगे, तो इस प्रकार मनको आज्ञा

करनेका कितना श्रेष्ठ परिणाम होता है, इसका आपको ही स्वयं ज्ञान हो जायगा।

मनको सदा प्रसन्न रखिये। थोडेसे कष्टसे मनकी चंचलता न होने दीजिये। कैसा भी प्रसंग आ गया, तो भी मनको शांत रखनेका अभ्यास कीजिये। यदि आपके मनमें चंचलता होगी तो उसको थोडा थोडा रोकते जाइये। मनमें प्रसन्नता, शांति, धैर्य और उत्साह रखिए। खेद, अशांति, भीति और निरुत्साह न रखिये। मनको ऐसा बनाना आपके अधीन है। और यह जितना कठिन आप समझते हैं, उतना कठिन भी नहीं है। एक बात यहाँ कहना आवश्यक है कि यदि मनके अंदर उत्साह बढानेका आप प्रयत्न करेंगे, तो आपकी शारीरिक व्याधियाँ भी हट जायँगी। बहुतसी व्याधियाँ उत्साहभंग होनेके समय उत्पन्न होती हैं। यह अनुभवकी बात है, इसलिये यहां लिखी है। पाठक इससे विना औषधि आरोग्य प्राप्त कर सकते है। प्रयत्न करके देखिये।

इस प्रकार तप, स्वाध्याय और प्रसन्नताका अभ्यास करना चाहिये। इसके साथ साथ परमेश्वरकी भक्ति करना आवश्यक है; क्योंकि सब श्रेष्ठ गुणोंका वही स्रोत है। योगसाधन करनेवालेको इस प्रकार अपनी भूमिका तैयार करनी चाहिये।

---

५. पृष्ठवंशका महत्त्व

बहुत लोगोंका यह ख्याल है कि केवल प्राणायाम, ध्यानधारणा आदि कुछ विशेष प्रकारके अनुष्ठानको ही 'योग-साधन' कहना योग्य है। परन्तु यह विचार ठीक नहीं है। जो योगसाधन विषयपर केवल वक्तृत्व करना चाहते हैं, अवश्य कहें कि केवल ध्यानधारणा ही योगसाधन है और व्यवहारके अन्य नियम योगसाधनमें अंतर्भूत नहीं होते। परंतु जो योगसाधनको अपने जीवनमें ढालना चाहते हैं, वे वैसा नहीं कह सकते। इनके लिये अपना हरएक श्वास

और उच्छ्वास तथा हरएक हलचल योगके विधिके अनुसार ही करना उचित है। अन्यथा योगकी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

योगका विषय केवल बोलनेका नहीं है, प्रत्युत स्वयं निश्चयपूर्वक आचरण करनेका है। जिसका जैसा इस मार्गके अनुसार आचरण होगा, उसको वैसी सिद्धि निश्चयपूर्वक प्राप्त हो सकती है। अनुष्ठानमें थोडी भी अशुद्धि हो गई, तो सिद्धि उस प्रमाणसे दूर रहती है। इसी कारण अपना सब व्यवहार योगके अनुसार करना हरएकको उचित है।

कई लोग समझते हैं कि योगका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य ऐहिक व्यवहारके लिये निकम्मा बन जाता है।। परन्तु यह विचार बिलकुल ठीक नहीं है। वास्तविक रीतिसे विचार किया जायगा तो पता लग सकेगा कि योगका अनुष्ठान न करनेसे ही मनुष्य निकम्मा बन रहा है। योगके अभ्याससे मनुष्यकी प्रत्येक शक्ति विकसित होती है। जैसा फूल खिल जानेसे शोभा बढती है उसी प्रकार योगसाधनके अनुष्ठानसे मनुष्यकी सब आंतरिक और बाह्य शक्ति प्रफुल्लित हो जानेसे मनुष्यका पूर्ण विकास हो सकता है। शारीरिक, वैयक्तिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, कौटुंबिक, गृहविषयक, नागरिक, जातीय, देशीय, प्रांतीय, राष्ट्रीय तथा राष्ट्रांतरीय सब प्रकारके व्यवहार उत्तम प्रकारसे करनेके लिये जो योग्यता चाहिये वह योगसाधनसे निःसंदेह प्राप्त होती है। परन्तु सर्वसाधारण जनतामें योगविषयक कल्पनाएं इतनी संकुचित हैं कि जिनके कारण ही मनुष्य प्रतिदिन गिर रहा है और इतना होनेपर भी फिर योगसाधनसे डरता रहता है।

हाँ! इतनी बात सच है कि जो दुराचार और नाना प्रकारके दुर्व्यसनोंके कारण व्यभिचार और अत्याचार किये जाते हैं, उनसे दूर रहना पडता है, इसलिये दुराचारी और दुर्व्यसनी लोगोंकी दृष्टिसे योगाभ्यास कदाचित् अनुष्ठानके योग्य न होगा, परन्तु दुर्व्यसनोंसे कारण उन्नति होती है। ऐसा जबतक सिद्ध नहीं होगा, तबतक किसीको भी योगसाधनसे दूर रहना उचित नहीं है। क्योंकि सब सत्य, आनंद और श्रेष्ठ सुखोंकी प्राप्ति इसी योगके अनुष्ठानसे होती है।

आजकल दुर्व्यसनोंका प्रचार इतनी भयानक रीतिसे हो रहा है और किसी देशमें कोई सरकार उनके प्रतिबंधके लिये किसी प्रकारका भी यत्न नहीं कर रही है, यह सचमुच आश्चर्य है !!! सर्वसाधारण जनता अपने हितके विषयमें उदासीन है और किसी सरकारका अपनी प्रजाके हितसाधन करनेमें योग्य लक्ष्य नहीं है। यह बात और है कि किसी देशमें एक बातका प्रबंध उत्तम है और किसी देशमें न्यून है। परन्तु योगमार्गकी दृष्टिसे सब राष्ट्रोंमें किसी प्रकारका भी उचित प्रबंध नहीं है। हमारे प्राचीन आर्यराष्ट्रमें इस प्रकारका उत्तम प्रबंध था और सर्वसाधारण जनतके दैनदिनीय व्यवहारमें योगके मार्गका अनुष्ठान न्यूनाधिक रीतीसे राजशासनके द्वारा ही रखा गया था। परन्तु वह समय आज नहीं है। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको अपने तथा अपने संबंधी और इष्टमित्रोंके आचरण और अनुष्ठानका विचार करने तथा उनमें योगसाधन करनेकी बुद्धि जाग्रत करनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

आजकल नगरों और ग्रामोंमें चाय, काफी, कोको आदि उष्ण पेयोंके व्यसन; सोडावाटर, लेमोनेड, जिंजर आदि शीत पेयोंके व्यसन, तमाखु, सिगारेट, हुक्का, बीडी, तमाखूका खानपान नस्य आदि प्रकार, भंग चरस आदि धूम्रपानसे दुष्ट दुर्व्यसन, भंगकी ठंडाई, ताडी, माडी, मदिरा, आसव, मद्य आदि सब प्रकारके अत्यंत हानिकारक, भयानक और विनाशक दुष्ट दुर्व्यसन जनतामें प्रचलित हो रहे हैं !!! चाय, काफी, सिगारेट आदि तो सभ्य समाजमें भी घुस गये हैं !! इनमें हरएक व्यसन बुद्धि, मन और शरीरका घातपात करनेके लिये समर्थ है, फिर जहाँ सब मिलकर हमला चढाते हैं, वहाँ पूछना ही क्या है? अकाल मृत्यु इनके कारण बढ रहा है, परन्तु शिक्षित और अशिक्षित कोई भी इसका विचार नहीं करते !!! पाठकगण ! सोचिये तो सही कि जनताका प्रवाह किस प्रकार विनाशकी ओर जा रहा है !

पाठकोंसे यहां इतना ही कहना है कि यदि उनके मनमें योगसाधनद्वारा अपनी उन्नतिका साधन करना है तो उनको उचित है कि वे किसी व्यसनके फंदेमें न फंसे, और अपने मित्रों तथा संबंधियोंको भी बचावें। शुद्ध जलपान और सात्विक भोजन परिमित प्रमाणमें करनेके साथ योगसाधन करनेसे उत्कृष्ट लाभ

हो सकता है। परन्तु किसी व्यसनका गुलाम बनकर यदि योगसाधनके प्राणायाम आदि विधि किये जाँयगे, तो निःसंदेह रोग बढेंगे और विविध कष्ट प्राप्त होंगे। इस लिये योगमें प्रवृत्त होनेवालेको उचित है कि वह अपने खानपानके व्यवहारमें योग्य दक्षता रखे।

योगसाधनसे दीर्घ आयुष्य और नीरोगता रूप शारीरिक फल होता है, सूक्ष्म विचार करनेवाला उत्साही मन प्राप्त होता है, अतींद्रिय विषयोंका साक्षात्कार बुद्धिसे हो सकता है और विविध आत्मशक्तियोंके अनंत चमत्कार इस योगसाधनसे सिद्ध हो सकते हैं। जगत् के संपूर्ण व्यवहार करते हुए मनुष्य उक्त योग्यता प्राप्त कर सकता है। परन्तु अपने हरएक व्यवहारकी जाँच मनुष्यको करनी चाहिये, अन्यथा उन्नति नहीं हो सकती। छोटेसे छोटे व्यवहार और चालचलनका योग और स्वास्थ्यके साथ कितना घनिष्ठ संबंध है, इसका थोडासा उदाहरण यहाँ बताया जाता है। बैठने, खडे होने और सोनेका ही इसके लेखमें विचार करेंगे। सभी मनुष्य बैठते हैं, खडे होते हैं और सोते हैं, परन्तु योगसाधनका इनसे क्या संबंध है? योग इनके विषयमें क्या शिक्षा देता है? इसका विचार बहुत ही थोडे लोग करते हैं और योगके अनुसार बैठते, खडे रहते और सोते हैं।

पाठक जन कदाचित् आश्चर्य करेंगे कि केवल बैठने, केवल खडे रहने और केवल सोनेमें योगका क्या संबंध है? इनके संबंधका स्पष्ट पता लगानेके लिये अपने पीठकी हड्डियोंका थोडासा विचार करना चाहिये। पिंडलीकी हड्डी, रीढकी हड्डी, जो पीठमें सिरसे चूतडों तक अनेक छोटी हड्डियोंका एक स्तंभ जैसा है वही जीवनका मुख्य स्तंभ है। योगके प्रत्येक अनुष्ठानका इस मणिस्तंभके साथ अत्यंत निकट संबंध है। आसनोंके अभ्याससे इस स्तंभके प्रत्येक ,मणिका दूसरे मणिके साथ संबंध सुयोग्य प्रकारसे होकर बीचके ज्ञानरज्जुओंको पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त होता है। इन रीढकी हड्डियोंके बीचमेंसे ही सब ज्ञानतंतुओंके जाल फैले हैं और इसी लिये यदि इस पृष्ठवंशमें टेढापन उत्पन्न हुआ तो उस स्थानके ज्ञानतंतु हड्डियोंके दबावके कारण क्षीण होने लगते हैं और जब ज्ञान-

तंतुओंमें क्षीणता आने लगती है, तब उस ज्ञानतंतुओंके क्षेत्रमें विविध बिमारियोंके लिये स्थान बन जाता है। इससे पाठक जान सकते हैं कि इस रीढकी हड्डियोंके पृष्ठवंशमें किसी प्रकारका अयोग्य टेढापन उत्पन्न न करनेकी कितनी आवश्यकता है। अयोग्य समयमें वृद्धावस्था, विविध प्रकारके रोगोंका शिकार बननेकी स्थिति, मनकी उत्साहहीन अवस्था आदि सब इस पृष्ठवंशके विगाडसे होती है।

मनुष्य जब खडा होता है अथवा बैठता है, तब आप उसके पीठ, कमर, गला और सिरका अवश्य ख्याल कीजिये कि इनकी अवस्था कैसी है। प्राय चलते हुए मनुष्यका सिर आगे झुकता है, ऐसा आप देखेंगे। सिरका आगे झुकाव होनेसे उनके गलेकी शक्ति क्षीण हो जाती है। सध्याके इंद्रियस्पर्शमन्त्रोंमें "कंठ" शब्द कंठविषयक सावधानीकी सूचना दे रहा है। गलेके व्यायामोंसे गलेमें इतनी शक्ति अवश्य बढानी चाहिये कि वह गला अपने सिरका भार अवश्य सहन कर सके। सिरके बोझसे गलेका आगे झुकाव बता रहा है कि पृष्ठवंशका सबसे महत्त्वका गलेका भाग अर्थात् वहाँकी रीढकी हड्डियाँ अपने स्थानसे आगे झुकने लगी हैं और वहाँके ज्ञानतंतुओंपर विनाकारण दबाव पड रहा है, उनकी अवश्य क्षीणता हो रही है।

लिखनेके समय सिरका झुकाव आगे होता है। बैठकर लिखनेवाले और कुर्सीपर बैठकर कागज टेबलके ऊपर रखकर लिखनेवाले ये दोनों यदि सावधानता न रखेंगे, तो उनका सिर लिखनेके समय आगे झुकेगा और पीठमें भी आगे झुकाव उत्पन्न होगा। लिखनेका व्यायाम करनेवालोंके लिये अत्यन्त आवश्यक है कि वे अपनी पीठ, गर्दन और सिर समसूत्रमें रखनेका अवश्य यत्न करें और अपने आपको उक्त हानिसे बचावें। गलेके पृष्ठवंशमें टेढापन आनेसे उदान प्राणके स्थानका विगाड होता है और इस कारण वहाँका स्वास्थ्य निश्चय से बिगड जाता है। तथा पीठमें अदरकी तरफ झुकाव होनेसे फेफडे दब जाते हैं और फेंफडे दब जानेसे प्राणका स्थान सकुचित होता है। जहाँ प्राणका संकोच होनेका भय है, वहाँ हरएक प्रकारकी बीमारीका अवश्य ही संभव है। यह बात कभी भूलनी नहीं चाहिये कि प्राणपर ही हमारा जीवन निर्भर है।

जब लोग बैठनेके समय सीधे समसूत्रमें न बैठते हुए अदरकी तरफ झुककर

बैठते हैं और सिरको और भी अंदर झुका देते हैं, तब न समझते हुए वे अपने मृत्युको पास करते हैं। तथा विविध बीमारियोंको मानो निमंत्रण देते हैं। इस-लिये योगशास्त्रमें कहा है कि शरीर, गला और सिरको समसूत्रमें रखना चाहिये।

चलनेके समयमें भी आगे झुककर चलनेसे सारे पृष्ठवंशपर अस्वाभाविक दबाव पड जाता है। इस प्रकार चलनेका बुरा अभ्यास ठीक नहीं है। सोनेके समय बडा ऊंचा सिरोना सिरके नीचे लेकर सोनेका बहुत बुरा अभ्यास कइयोंको होता है। निद्रामें कि जिस समय शरीरकी समानशक्ति कार्य करती है, और जिस निद्रामें मनुष्यके त्रिविध अत्याचारोंमें उत्पन्न होनेवाली न्यूनताकी पूर्ति करनेका समान प्राणका व्यवहार चलता है, कमसे कम इस समयमें भी मनुष्यको उचित नहीं है कि वह बडा भारी सिरोना सिरके नीचे रखकर सिरको अपने पृष्ठवंशसे टेढा रखनेका प्रयत्न करे।। पीठपर सोनेके समय तो वास्तविक सिरोनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं, परंतु दायें अथवा बायें अंगपर सोनेके समय कुछ थोडेसे सिरोनेकी आवश्यकता होती है इस समय सिरोना न होनेसे सिर उस दायें अथवा बाये भागमें झुकने लगता है। तात्पर्य सिरोना पतलेसे पतला अपनी आवश्यकतानुसार रखना उचित है और इसका हमेशा विचार रखना चाहिये कि अपना पृष्ठवंश टेढामेढा तो नहीं हो रहा है?

मनुष्यके पृष्ठवंशमें स्वयं नैसर्गिक एक प्रकारकी वक्रता है। वह वैसीही रहनी चाहिये। चूतडोंमें पृष्ठवंश थोडासा पीछे होकर कमरमें थोडासा आगे झुककर फिर पीठमें थोडासा पिछे झुकता हुआ गलेमें थोडासा आगे झुककर सिरमें प्रविष्ट होता है। यह नैसर्गिक अतएव स्वाभाविक वक्रता वैसी ही रखनी चाहिये। मनुष्यके प्रयत्नसे इसका सीधेपन हो ही नहीं सकता और होना अभीष्ट भी नहीं है। इस स्वाभाविक वक्रताको छोडकर जो टेढापन मनुष्यकी कृतिसे बन रहा है और जो बैठने चलने सोनेके समय विशेष ख्याल न रखनेके कारण उत्पन्न होता है, वह पृष्ठवंशका अस्वाभाविक टेढापन बहुत घातक है। प्रत्येक पाठकको इसलिये इस विषयमें सावधानी धारण करनी चाहिये।

योगमें प्रायः प्रत्येक आसन और विशेषतः शीर्षासन, चक्रासन आदि उक्त दोषको ठीक करनेके लिये ही हैं। अपनी हनुको कंठ मूलमें लगानेका अभ्यास गलेकी हड्डियोंको ठीक करनेके लिये ही विशेष कर है। पाठक उक्त बातका अभ्यास करके देखें। अपनी हनु अर्थात् ठोडीको गलेकी मूलमें लगाकर रखें। दोनों बाहुओंसे दो हड्डियाँ गलेके मूलमें आती हैं और उनके और गलेके मूल संधिमें एक अंगुष्ठ मात्र नरमसा स्थान होता है, वहाँ अपनी ठोडीको लगाकर थोडी देर स्थिर रहनेका अभ्यास करना चाहिये। इस अभ्यासको करनेपर पाठकोंको स्वयं अनुभव होगा कि गलेके स्थानकी रीढकी हड्डियाँ समसूत्रमें हो रही हैं, छाती आगे फैल रही है, फेंफडोंको खुला स्थान प्राप्त हो रहा है और पृष्ठवंशमें सीधापन आ रहा है। हनुको कंठमूलमें रखनेसे इतने लाभ हैं और भी इससे कई लाभ होते हैं।

दोनों बाहुओंसे जो दो हड्डियाँ कंठमूलमें आती हैं, उनके मध्यस्थानमें हनु (ठोडी) को रखनेका अभ्यास करनेसे भी बहुत लाभ होता है। इसको ' कंठबंध ' कहते हैं। इस कंठबंधके अभ्यासका बहुत लाभ शास्त्रोंमें वर्णन किया है। इससे लाभ होनेका मुख्य कारण इससे पृष्ठवंशका सीधापन हो जाता है, यही है। तथा यदि पाठक इसका ठीक अभ्यास करेंगे, तो स्वयं वे अनुभव कर सकते हैं कि पृष्ठवंशमें हलकापन इससे प्राप्त होता है। हलकापन ही आरोग्यका चिह्न है और भारीपन बीमारीका चिह्न है।

हड्डियोंके छोटे छोटे अनेक टुकडे एक दूसरेपर रहकर यह पृष्ठवंश बनता है। इस सब पृष्ठवंशकी एक ही अखंड हड्डी नहीं है। प्रत्येक दो हड्डियोंके संधि-स्थानको पर्व कहते हैं। प्रत्येक पर्वमें मांसपेशी है। जब अस्वाभाविक दबाव पृष्ठ-वंशपर पडता है, तब यह मांसपेशी बहुत दब जाती है। जब आप पूर्वोक्त प्रकारका कंठबंध करेंगे, तब आप अनुभव कर सकते हैं कि अपने अस्वाभाविक झुकावके कारण जो दबाव पृष्ठवंशपर तथा पूर्वोक्त पर्वस्थानकी मांसपेशीपर पड रहा था, वह हट गया है और प्रत्येक पर्व ऊपर उठ रहा है और बीचकी मांसपेशीको अच्छा खुला स्थान मिल रहा है। थोडेसे अभ्याससे प्रत्येक पाठक इसका अनुभव देख सकता है।

कंठबंधका अभ्यास प्राणायामके साथ संबंध रखता है। इसका वर्णन आगे क्रमशः इस पुस्तकमें आ जायगा। यहाँ इतना ही बताना है कि केवल बैठने, खड़े रहने, चलने फिरने, दौड़ने और सोनेके समय हमें किस बातका अवश्य ख्याल करना चाहिये और पृष्ठवंशका स्वास्थ्य किस प्रकार रखना चाहिये। इस साधारण व्यवहारके विषयमें भी योग कितनी योग्य शिक्षा दे रहा है, इसका विचार यहाँ पाठक अवश्य करें।

पीठको हमेशा लकड़ीके समान सख्त सीधा रखना चाहिये, ऐसा पाठक यहा न समझें। उसका अस्वाभाविक टेढ़ापन हटाना और स्वाभाविक नैसर्गिक वक्रता तथा कार्यक्षमता स्थिर रखना योगको अभीष्ट है। जो पाठक योगके आसन करते जाँयगे, उनको इस बातका पूरा अभ्यास हो जायगा और उनके पृष्ठवंशके सब दोष उक्त अभ्याससे दूर हो जाँयगे।

कंठबंधके तीन प्रकार पूर्व स्थानमें दिये ही हैं। उनके अभ्यास करनेके समय विरुद्ध गतिसे गलेको घुमाना भी आवश्यक है- (१) जब आप कंठमूलमें अपनी हनुको लगायेंगे, तो इसके पश्चात् आपको आवश्यक है कि आप अपनी ठोडीको ऊपर उठाकर गलेको जहाँतक हो सके वहाँतक ऊपर खींचिये और गलेका पृष्ठ-भाग संकुचित करके सिरका पृष्ठभाग गलेके पिछले मूलमें लगाइये। ऐसा करनेके समय आपके आख, नाक और मुख सीधे छतके सम्मुख अथवा आस्मानके सम्मुख हो जायगे, गलेका सामनेका भाग खींचा जायगा और पिछला भाग दबाया जायगा। (२) जब आप दाई और बाई हड्डियोंपर क्रमशः अपनी ठोडी रखनेका अभ्यास करेंगे, उस समयमें भी आपको उसकी विरुद्ध दिशामें पूर्वोक्त प्रकार ही सिरको पीछे ले जाना होगा। अर्थात् दाई हड्डीपर हनु रखनेके पश्चात् बाई पीठको और बाई हड्डीपर हनु रखनेके पश्चात् दाई पीठको पीछेसे सिर लगाना चाहिये।

इस प्रकारके अभ्याससे न केवल गलेका पृष्ठवंश, परंतु पृष्ठवंशका सभी भाग ठीक हो जाता है। पाठकगण इतने विवरणसे जान गये होंगे कि बैठना खड़ा रहना और सोना आदि योगकी दृष्टिसे किस प्रकार करना चाहिये। आप यदि

दीवारके साथ बैठेंगे तो आपके चूतड, पीठ और सिरका पृष्ठभाग दीवारके साथ ठीक प्रकार लगना चाहिये। यदि आप दीवारके साथ खडे हो जायेंगे, तो अपने पावकी, एडी, चूतड, पीठ और सिरका पृष्ठभाग ठीक प्रकार दीवारके साथ लगना चाहिये। जो सिरपरसे पानीका घडा उठाकर लाते हैं, उनका गला, सिर, छाती आदि कैसी समसूत्रमें रहती है, आप अवश्य देखिये। सिरपर पानीका घडा उठानेके अभ्याससे भी गला बलवान् और समसूत्रमें हो जाता है। यदि इस प्रकार पानीका घडा सिरपर लेना आपकी अवस्थामें अनुचित है, ऐसा आपका विचार होगा, तो छोटे तीन लोटे पानीसे भरकर एकपर दूसरा और उसपर तीसरा सिरपर रखिये और अपने कमरेमें एक बार इधरसे उधर भ्रमण कीजिये। लोटा अथवा पानी न गिरेगा तो आपका खडा रहना ठीक हुआ ऐसा समझिये और वैसा खडा रहनेका अभ्यास कीजिये। अथवा बडे दो चार पुस्तक सिरपर रखिये, उन्हें आप सरिपर भी रख सकते हैं और इधर उधर भ्रमण कीजिये। कोई पुस्तक आपके सिरपरसे नीचे न गिरेगा, तो आप समझिये कि इस प्रकार खडा रहना चाहिये। चाहे केवल दीवारके साथ खडे रह जाइये, पानीका घडा सिरपर धारण कीजिये अथवा पुस्तकें सिरपर उठाइये, जो मर्जी आवे वह कीजिये। इन बातोंमें कोई विशेषता नहीं है। जो मुख्य बात है, वह समसूत्रमें बैठने और खडे रहनेकी है, उसकी जिस किसी प्रकार आप साध्य कीजिये और सिरको आगे झुकने न दीजिये तथा पीठको सीधा रखिये, छातीका भाग आगे फैलने दें कंधे पीछे रहें और फेफडोंको अच्छी प्रकार फैलनेका अवसर दीजिये। बुद्धिका प्रवाह सिरसे पृष्ठवंशमेंसे गुजरकर नीचे तक पृष्ठवंशद्वारा फैलाना है, उसका प्रतिबंध न होने दें।

इस प्रकार पृष्ठवंशकी धारणा करनेके पश्चात् प्राणायाम करनेका अधिकार प्राप्त होता है, अथवा यों समझिये कि प्राणायामसे पूर्ण फलकी प्राप्ति हो सकती है। प्राणायामका एक स्थूल लाभ प्रसिद्ध ही है, जो रक्तशुद्धिद्वारा शरीरका आरोग्य करता है। इसके अतिरिक्त जो अन्य लाभ हैं, उन सबका वर्णन यहाँ संपूर्ण रीतिसे किया ही नहीं जा सकता। तथापि सारांशरूपसे उसका स्वरूप यहां बताया जाता है।

उक्त पृष्ठवंशके साथ ज्ञानतंतु सब शरीरमें फैले हैं। जब पृष्ठवंशसे ज्ञानतंतु बाहिर आते हैं, तब कुछ अंतरके पश्चात् अनेक ज्ञानतंतुओंकी एक एक ग्रंथि बनी होती है। योगकी उच्च भूमिकाकी सिद्धि इन ग्रंथियोंकी स्वाधीनतापर निर्भर है। इसको योगमें "ग्रंथिभेद" कहते हैं। प्राणायामसे ही ग्रंथिभेदना होता है और दूसरा कोई साधन इस कार्यके लिये नहीं है। "ऊर्ध्व भागमें जिस अश्वत्थ वृक्षका मूल है और जिसकी शाखाएं निम्न भागमें फैली हैं" (गीता अ. १५ ।) ऐसा श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा हुआ वृक्ष यही है। इसके मूल मस्तिष्कमें हैं और शाखाएं पृष्ठवंशद्वारा निम्न भागमें सारे शरीरमें फैली हैं। पृष्ठवंशके प्रत्येक हड्डीके सन्मुख एक एक ग्रंथि है और इस ग्रंथिकी स्वाधीनतासे बड़ी विलक्षण सिद्धियाँ होती हैं। उदाहरणके लिये नाभिभागसे थोडे ही ऊपरके स्थानमें "सूर्यग्रंथि" है। जब प्राणायामद्वारा इस ग्रंथिकी स्वाधीनता होती है, तब अव्याहत जीवनप्रवाह शरीरमें शुरू होता है। योगी लोग कहते हैं कि इच्छामरणकी सिद्धि इससे प्राप्त होती है। योगी अपनी पूर्ण योगायुकी समाप्तितक अपनी इच्छासे जीवित रह सकता है। जो जो सत्पुरुष इच्छाशक्तिके चमत्कार करते रहते हैं, उनको इस सूर्यग्रंथिकी स्वाधीनतासे बलकी प्राप्ति होती है।

प्राणायामसे इस प्रकार प्रत्येक ग्रंथिके भेदके द्वारा विलक्षण सिद्धि प्राप्त होती है। इस योगबलकी प्राप्तिके लिये पृष्ठवंशकी समसूत्रमें स्थिति चाहिये। पृष्ठवंश की समसूत्रमें स्थिति होनेके लिये निःसंदेह ही अभ्यास चाहिये। चलना, बैठना, सोना, खडा होना आदि काम करनेके समय अपने पृष्ठवंशकी समसूत्रता रखनेका यत्न होनेसे एक वर्षमें पृष्ठवंश ठीक हो जाता है और पूर्व समयकी न्यूनता हट जाती है।

जो लोग योगाभ्यास करना नहीं चाहते उनको भी पृष्ठवंश समसूत्रमें रखनेके अभ्याससे बडा आरोग्य प्राप्त हो सकता है। पृष्ठवंश ठीक प्रकार रखनेसे रोग स्वयं हट जाते हैं। इसलिये सर्वसाधारण जनताको भी इसका अभ्यास लाभदायक हो सकता है। जो प्राणायामादि करेंगे, उनको अधिक लाभ होगा, परंतु जो प्राणायाम नहीं करेंगे, उनको भी इस अभ्याससे बडा लाभ पहुंच सकता है। छोटे

छोटे बच्चोंको जबतक वे स्वयं बैठना नहीं चाहते, जान बूझकर जबरदस्ती बिठ-लानेके प्रयत्नसे उनके पृष्ठवंशमें बिघाड होता है, जिसका परिणाम उनको आयु-भरतक भुगतना पडता है। मातापिता इस बातका अवश्य ख्याल रखें। तथा अन्य पाठक अपने इष्टमित्रोंके बैठने, खडे रहने आदिके विषयमें इस योगदृष्टिसे विचार करें और अपने कर्तव्यको जान लें।

---

६. सब शक्तियोंसे योग

(१) **कैवल्य**— कैवल्य स्थिति प्राप्त करना योगसाधनकी अंतिम सिद्धि है। 'कैवल्य' का अर्थ 'केवल स्थिति' है। दूसरेका संबंध छोडना और अपनेही बलसे स्वयं स्वावलंबनपूर्वक रहना तथा केवल अपनी शक्तिका ही अनु-भव लेना, इस अवस्थामें होता है। साधारण स्थितिमें मनुष्य सब सुखोंके लिये दूसरोंपर निर्भर रहता है। जहा दूसरेका आश्रय करना होता है, वहां परा-धीनता है और जहा पराधीनता है, वहां अवश्य दुःख होना ही है। इसलिये पूर्ण स्वातंत्र्यका अनुभव योगसाधनसे होता है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण इन तीन शरीरोंके आश्रयसे क्रमशः जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्थाओंका अनुभव प्रत्येक जीव ले रहा है। अर्थात् ये तीनों अवस्थाएं जीवको शरीरके आश्रयसे प्राप्त होती हैं, इसलिये इनमें पराधीनता है और पराधीनताके कारण इन तीनों अवस्थामें सुखके साथ साथ अनिच्छित दुःखकी प्राप्ति भी होती है। इसलिये इन तीनों शरीरोंके विना अपनी निज अवस्थाका अनुभव लेना और वहांके निज स्वातंत्र्यका पूर्ण आनंद प्राप्त करना हरएक जीवका परम अभीष्ट होना स्वाभाविक ही है। इस अभीष्टके साधनका नाम योगसाधन है। कैवल्य अवस्था अंतिम ध्येय है, अर्थात् पूर्ण स्वातंत्र्य ही अंतिम ध्येय है। इसको "निरालंब अवस्था" भी कहते हैं। किसी अन्यका अवलंबन इस अवस्थामें करना नहीं होता है। परंतु आत्मा अपने ही निज रूपमें स्वतंत्रताका अनुभव

करता रहता है। इसको ' आत्मयोग ' कई विद्वान् इसलिये कहते हैं, कि इस अवस्थामें सर्वव्यापक परम आत्मतत्त्वका शुद्ध संबंध होनेसे इस अवस्थामें आत्माका परमात्माके साथ योग होता है। परन्तु यह बात अंतिम अवस्थाकी होनेके कारण इस अवस्थाके विषयमें हम कुछ भी लिख नहीं सकते। स्वानुभव होनेके विना लिखना योग्य भी नहीं है। जो भाव केवल तर्कसे तथा शब्दप्रमाणसे जाना जा सकता है, वह ऊपर दिया ही है। उन्नति चाहनेवाले पाठक इस अंतिम अवस्थाके विषयमें प्रश्न पूछते रहते हैं, इसलिये यहां उनको इतना ही निवेदन है कि इस श्रेष्ठतम भूमिकाका अनुभवज्ञान यहां किसीको नहीं है। इसलिये उनके प्रश्नोंका उचित उत्तर दिया ही नहीं जा सकता। जब कभी वैसा सुयोग आ जायगा, उस समय देखा जायगा। तबतक हम सब मिलकर नीचली श्रेणियोंमें ही रहकर अपने अपने अनुभवकी बातें करेंगे और परस्परकी सहायता से अपना अपना मार्ग आक्रमण करेंगे।

(२) सुषुप्तियोग— पूर्वोक्त ' आत्मयोग किंवा तुर्यायोग ' का अनुभव जिनको नहीं है, उनको सुषुप्ति अर्थात् गाढ निद्राका तो अनुभव है। सब प्राणि मात्रको इस सुषुप्तिका अनुभव है। इस सुषुप्तिसे सब नीचेकी अवस्थाओंका सबको अनुभव है। इसलिये इन अवस्थाओंका उपयोग योगसाधनकी दृष्टिसे करना हरएकका कर्तव्य है। इनमेंसे हरएक अवस्थामें जिस रीतिसे योगसाधन किया जा सकता है, उसका संक्षेपसे इस लेखमें विवरण करना है। हमको जितनी अवस्थाएं प्राप्त हैं, उन सबमें सुषुप्ति अवस्था एक प्रकारसे ब्रह्मरूपताकी अवस्था ही है। सुषुप्ति समाधि और मुक्तिमें ब्रह्मरूपता होती है। इस कथनपर पाठक श्रद्धा रखें और सुषुप्तिको ब्रह्मरूपावस्था समझें। अनायाससे इस अवस्थामें ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होती है। शरीरकी भयानक रोगकी अवस्था भी इस समय भूली जाती है। यदि पाठक इस अवस्थाके अनुभवका विचार करेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि आत्माका शरीरसे भिन्नत्व इस अवस्थाके विचार से ज्ञात हो सकता है। निद्रा जिस प्रकार आती है, यदि उस संधि अवस्थाका अनुभव लेनेका पाठक यत्न करेंगे, तो एक वर्षके अंदर उनको स्वयं अनुभव

होगा कि उनका आत्मा शरीरसे भिन्न है। फिर इस विषयमें कोई शंका रहेगी ही नहीं। जागृतिकी समाप्ति और निद्राका प्रारंभ इस संधिसमयमें जो विचार मनमें रहता है, वही पुनः जागृत होनेतक स्थिर रहता है। इतना ही नहीं परंतु वह अपने स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरोंमें कार्य करता रहता है। इस शक्तिका पाठक उपयोग कर सकते हैं। उक्त संधिसमयमें प्रतिदिन-बुरा भला विचार रहता ही है। अर्थात् बुरे भले विचारके अनुसार शरीरपर बुरा भला परिणाम भी होता रहता है। इसलिये उक्त संधिसमयमें शुभ विचार ही स्थिर करनेका यत्न करना अत्यंत आवश्यक है। जिस समय शरीरमें कोई बीमारी रहती है, उस समय सोनेके पूर्व यदि पूर्ण आरोग्यका विचार मनमें स्थिर करनेका यत्न किया जायगा और 'मैं बीमार नहीं हूं' इस आरोग्यमय सुविचारके साथ यदि गाढ निद्रा आ जायगी, तो दूसरे दिन जागृतिके साथ ही पूर्व दिनकी बीमारी दूर होनेका अनुभव होगा। 'मन ही अमृत है' इसलिये सुविचारके साथ मन आरोग्य स्थापन कर सकता है। सुषुप्तिमें सुविचारकी स्थापना करनेका नाम ही सुषुप्तियोग है। जो बात ऊपर कही है, उसका पाठक भी अनुभव ले सकते हैं। संधिसमयके विचारोंपर अपना स्वत्व रखनेके लिये बहुत अभ्यास चाहिये। परंतु इसका बहुत प्रकारसे अनुभव लिया है और कइयोंके शरीरोंपर यह बात अजमाई है। इसलिये जो पाठक निश्चयसे प्रयत्न करेंगे, वे भी इस बातका विना संदेह अनुभव कर सकते हैं। इस संधिसमयमें शुभ विचारको स्थिर रखनेका सुलभ उपाय यही है कि उत्तमसे उत्तम मंत्रको अर्थज्ञानपूर्वक जपते जपते सो जानेका यत्न करना। इस प्रकार यत्न करते करते अनुभव होगा कि दूसरे दिन प्रातःकाल वही मंत्र आपही आप मनमें खडा रहता है। जब ऐसा होगा तब आप समझिये कि उक्त मंत्रका विचार रातभर आपके मनमें स्थिर रहा था। अनुभवके लिये आप आरोग्यवर्धक अथवा बलवर्धक मंत्र लीजिये और प्रतिदिन उसी एक मंत्रका जप कीजिये। यह जप विस्तरेपर सोते सोते ही करना चाहिये और साथ साथ जहांतक हो सके, वहांतक किसी अन्य अवस्थाका ध्यान भी नहीं करना चाहिये। कोई अन्य सुविचार अथवा

किसी सत्पुरुषका जीवन भी आप इस समय चिन्तनके लिं[illegible] प्रकार करनेके जो अन्य फल हैं, उनका विचार किसी अन्य समय किया जायगा। इस एक बातके अनुभवसे पाठक अपने मनकी शक्तिका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और थोड़े ही प्रयत्नसे यह बात साध्य हो सकती है।

(३) **स्वप्नयोग**—पूर्वोक्त सुषुप्तियोगके साथ ही स्वप्नयोगका अर्थात निकट संबंध है। साधारण अवस्थामें स्वप्नोंपर हमारी इच्छाका परिणाम नहीं होता, मनमाने स्वप्न होते रहते हैं। परंतु स्वप्नोंके दर्शनोंसे मनकी अच्छी अथवा बुरी अवस्थाका पता लग सकता है। जब स्वप्न अच्छे आते होंगे, उस समय समझिये कि मन अच्छे विचारमें ही रम रहा है। परंतु जब स्वप्न अश्लील और बुरे ही आते हैं, उस समय समझिये कि आपके मनमें कुविचार अवश्य आते हैं। दूसरे लोग आपको अच्छा समझते हैं अथवा बुरा समझते हैं, इस बातसे आपका अच्छा अथवा बुरा होना निश्चित नहीं हो सकता, परंतु आपके स्वप्नोंसे आप अपनी परीक्षा कर सकते हैं। स्वप्नमें आप अपने असली मनके स्वरूपमें रहते हैं। जैसे वास्तविक आपके विचार होते हैं, वैसे आपके सपने होते हैं। इसलिये सुविचार करनेसे स्वप्नयोग सिद्ध होता है। यदि आप सदा ही अच्छे विचार मनमें रखेंगे, अच्छे विचार सुनेंगे, अच्छे विचारोंके पुस्तक पढेंगे, तात्पर्य अपना मन अच्छे विचारोंसे परिपूर्ण रखेंगे तो आपको कभी बुरा स्वप्न नहीं आ सकता। योगसाधनद्वारा यदि आपको अपनी मानसिक शक्ति बढानेकी सदिच्छा है, तो आपको उक्त प्रकार अवश्य ही अभ्यास करना चाहिये। प्रत्येक दिन निद्राके प्रारंभमें और अंतमें प्रत्येक मनुष्य स्वप्नका अनुभव करता ही है। बीचमें भी स्वप्न दिखाई देते हैं। परंतु बहुत थोडे स्वप्नोंका स्मरण होता है। जिनका स्मरण होता है, उनका ही विचार करना है। इसके अभ्यासके लिये सुविचार-साधनका प्रति समय आपको ख्याल रखना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त आप अपनी इच्छानुसार अपने लिए एक आदर्श पुरुष मनमें धारण कीजिये। यदि ब्रह्मचर्यपालनकी इच्छा हो, तो भीष्मपितामहकी ओर ध्यान रखिये, दृढमन, सत्यप्रिय होना है, तो श्रीरामचंद्रकी करना जागृत रखिये, अथवा इसी प्रकार बलवान् बनना हो

तो बलभीमका स्मरण कीजिये और इनके चरित्रों में जो जो मुख्य उच्च बात होगी उसका मनमें ऐसा निदिध्यास कीजिये कि उसका अनुभव आपको स्वप्नमें वारवार आ जावे। अपने आपको वैसा बनानेका यत्न कीजिये और जो गुण इस प्रकार आप अपने आपमें धारण करना चाहते हैं, उस सद्गुणकी पराकाष्ठा परमात्मामें है, ऐसा समझकर उस गुणसे युक्त परमात्मा आपका परम आदर्श है, *इस बातको पूर्णतासे मनमें धारण कीजिये।* इस प्रकार करनेसे आपके स्वप्न भी उसी गुणसे युक्त होंगे। जब ऐसा होगा, तब आप समझिये कि स्वप्नयोगमें आपको सफलता होने लगी है। जो बात यहां लिखी है वह कोई अशक्य नहीं है, इसलिये हरएक मनुष्य पांच छः मासमें इसका कुछ न कुछ अनुभव ले सकता है। अपने सूक्ष्म देहको परिशुद्ध करनेके लिये इस योगका अभ्यास करनेकी अत्यंत आवश्यकता है। इसलिये पाठक यथावकाश इसको करते रहेंगे, तो उनको अवश्य ही लाभ होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

(४) बुद्धियोग- तर्कवितर्कसे परे श्रद्धाभक्तिसे युक्त अपनी परिशुद्ध निश्चयात्मक ज्ञानधारक शक्तिका नाम बुद्धि है, अथवा बुद्धिका यही अर्थ यहां अभीष्ट है। जो बलवती विश्वासपूर्वक निश्चयात्मक धारणा होती है, वही बुद्धि यहां अभिप्रेत है। संशयित मन ही सदा घात करता है। निश्चयात्मक दृढ भावनामय श्रद्धायुक्त बुद्धि ही उन्नतिकी साधक है। जो योगसाधनकी विलक्षण सिद्धियां होतीं हैं, वे सब इस बुद्धियोगसे होती हैं। श्रद्धाभक्ति इसमें विशेषत रखती है। श्रद्धासे, तर्कके विना जो भावना मनमें स्थिर होती है, वह फलवती होती है, यह योगका सिद्धांत है। परमेश्वरके विषयमें अटल विश्वासमय श्रद्धा मनमें स्थिर रखनेका अभ्यास जिस रीतिसे आप कर सकते हैं, उस रीतिसे आप कीजिये। इतनी परमात्मविषयक श्रद्धा आपके मनमें उत्पन्न होवे कि जो दूसरोंके तर्कवितर्कसे हटने न पावे। आपके दृढ अभ्याससे यह बात कालांतरमें सिद्ध हो सकती है। यद्यपि आप समझते होंगे कि आप आस्तिक हैं और आपका परमेश्वर पर भरोसा है, परंतु तर्कसे मानी हुई बात यहां कामकी नहीं है। अपना अस्तित्व जिस प्रकार आप विना प्रमाणके जानते और मानते हैं, उसी प्रकार

प्रमाणान्तरके बिना सब शुभ गुणोंकी पराकाष्ठाका आधार सर्वमंगलमय परमात्मा है, ऐसा तर्कहीन पूरा विश्वास मनमें स्थिर रखनेका यत्न कीजिये । इस बातपर योगकी सिद्धि निर्भर है। इसलिये कोई साधक इस विषयमें संदेह न धारण करे। जो तर्कसे ही सब बातें जानना चाहते हैं उनको उचित है कि वे इस विषयमें प्रथम जितना तर्क करना है, कर लें। जब तर्ककी गति कुंठित हो जायगी, तब उसके परेही परमात्माका अनुभव होगा। जबतक तर्ककी गडबड चलती है, तब तक बुद्धियोग साध्य होता ही नहीं, क्योंकि केवल श्रद्धामें ही इसकी सिद्धि होती है। इसलिये जो पाठक इस बुद्धियोगमें प्रगति करना चाहते हैं, उनको उचित है कि वे अपने अंदर निर्वितर्क श्रद्धा उत्पन्न करनेका यत्न करें । प्रकृतिके भेदसे इसके उपाय भी भिन्न होंगे और पाठक अपने ज्ञानके अनुसार इसका उपाय कर सकते हैं। सर्वसामान्य उपाय इतना ही है कि परमात्माको पूर्ण मंगलमय समझकर और उसको सर्वत्र देखनेका अभ्यास करते हुए सर्वत्र उसका मंगल कार्य ही देखनेका यत्न करना चाहिये। जब परमात्मविषयक उक्त श्रद्धा होगी, तब आपके आनंदको पारावार ही नहीं रहेगा। परंतु यह निर्वितर्क श्रद्धा मनमें स्थिर करनेका अहर्निश प्रयत्न करना चाहिये, तभी इसकी सिद्धि हो सकती है।

(५) **चित्तयोग**— चिंतन करनेके इंद्रियको चित्त कहते हैं। जिसकी प्राप्तिकी इच्छा होती है, उसका चिंतन यह चित्त करता रहता है। व्यसनी लोग अपने व्यसनके पदार्थ प्राप्त न होनेके समय उन पदार्थोंका जिस आतुरतासे चिंतन करते हैं और उनको जैसा उन पदार्थोंके बिना दूसरा कई ख्याल सूझता भी नहीं, उसी प्रकार योगसाधन करनेवालोंको अपने प्राप्तव्यका ध्यान होना उचित है। जो आपका अभीष्ट योगसाधनसे प्राप्तव्य होगा, उसका चिंतन सदा आपको करना होगा। अथवा अभ्यास करनेके लिये कोई अच्छा विचार आप अपने लिये प्रति मास चुन सकते हैं। '' मैं आत्मा हूं और मैं शरीरसे भिन्न हूं। '' इसी बातका सदा ध्यान करनेसे अथवा इसीके चिंतनसे अपना शरीरसे भिन्न अस्तित्व अनुभवमें आता है। परमेश्वरके एक एक गुणका नित्य चिंतन करनेसे उस गुणका

विकास अपने अदर होने लगता है। चित्तसे जिसका चिंतन होगा, उसके समान गुणधर्म प्राप्त होते हैं। इसलिये सदा सावधान रहना चाहिये और चित्तमें कोई बुरा विचार ठहरने नहीं देना चाहिये। आपको पत्ता हो या न हो, आपका चित्त किसी न किसी बातका अवश्य ही सदा चिंतन करता रहता है। यदि अच्छे विचारका चिंतन न होगा, तो बुरे विचारका चिंतन अवश्य ही होगा। इसलिये अपने चित्तको स्वाधीन करके उसमें ठीक उन्नतिसाधक विचारोंका ही चिंतन करवाइये।

(६) **इच्छायोग**— जिससे मनुष्य किसीकी प्राप्ति अथवा निवृत्तिकी इच्छा करता है, उसको इच्छाशक्ति कहते हैं। इच्छाका बल इतना महान् है कि इस इच्छाशक्तिकी सहायतासे मनुष्य हरएक प्रकारके महान् महान् पुरुषार्थ कर रहा है। मनुष्य बुरा हो या अच्छा हो, दोनोंके पास प्रबल इच्छाशक्ति रहती है, एक उसको बुरे कार्यमें लगाता है और हीन बनता है और दूसरा उसीको श्रेष्ठ कर्मोंमें लगाकर उन्नत होता है। इसलिये कोई यह न समझे कि अपने पास इच्छाशक्ति नहीं है। हरएकके पास इच्छाशक्ति है, परंतु थोडे ही सत्पुरुष ऐसे हैं कि जो इस शक्तिको एकत्रित करके उत्तम पुरुषार्थकी सिद्धिके लिये ही प्रयुक्त करते हैं। यदि प्रयत्न किया जाय, तो हरएकको यह साध्य हो सकता है, थोडेसे प्रयत्नकी अपेक्षा है। थोडेसे प्रयत्न करनेपर 'इच्छा' से बडे बडे कार्य किये जा सकते हैं। बुराईसे बचना केवल इच्छाशक्तिपरही निर्भर है। यदि आप योग्य रीतिसे इच्छाशक्तिका प्रयोग करेंगे तो आप विविध बीमारियोंसे बच सकते हैं। बीमारीकी संभावना होनेपर आप अपनी सब शक्ति एकत्रित कीजिये और कहिये कि 'यह शरीर मेरा स्वराज्य है, मेरी इच्छा नहीं है कि कोई बीमारीके विजातीय रोगबीज यहां आकर बसें और अपना अधिकार इस मेरे शरीरमें जमावें।' इस प्रकार आप अपनी प्रबल इच्छाशक्तिद्वारा रोगोंके आक्रमणसे बच सकते हैं। जो बात आप अपनी इच्छाशक्तिसे इस शरीरक्षेत्रमें करना चाहेंगे वह बात यहां बन जायगी और जो नहीं करना चाहेंगे वह नहीं होगी। इसी तरह हो भी रहा है, परंतु आपको पता नहीं है। आप अपनी इच्छाशक्तिकी परीक्षा करना प्रारंभ करेंगे, तो आपको पता लग जायगा कि इतनी प्रबल

शक्तिका आप अपने ही घात करनेमें कैसा उपयोग कर रहे हैं। इसलिये अपनी इच्छाको अपने स्वाधीन रखिये। जो बात आप करना नहीं चाहते, वह बात अपनी इच्छामें आगई तो उसको दूर कीजिये और फिर भले सुविचारको अपनी इच्छामें धारण कीजिए। यही इच्छायोग है।

(७) **मानसयोग**—अच्छे और बुरेका विचार करना मनका धर्म है। मनन करनेवाले इंद्रियको ही मन कहते हैं और मनकी शक्तिको अपने अधीन करना तथा उसको अपनी उन्नतिके कार्यमें लगाना 'मानसयोग' कहलाता है। हरएकका मन कुविचार और सुविचार करता रहता है, इस मनको एकाग्र करनेका अभ्यास करना चाहिये। आप चाहे किसी पदार्थपर एकाग्र कीजिये अथवा शब्दपर कीजिये। मनकी एकाग्रता करनेके अनेक साधन होंगे। इस पुस्तकमें उनका यथायोग्य विचार क्रमशः आ जायगा। यहां इतना ही कहना है कि जबतक मन एकाग्र नहीं होता, तबतक उससे आप अपनी उन्नति नहीं कर सकते। मन ही परतंत्रता और स्वतंत्रताका हेतु है। जब आप अपने मनको एकाग्र कर सकेंगे, तब आपको अपने मनकी विलक्षण शक्तिका पता लगेगा। मनकी चंचलताके कारण आपकी सब शक्तिका अपव्यय हो रहा है। इसलिये आपको उचित है कि जिस किसी रीतिसे आप अपने मनको एकाग्र कर सकेंगे, उस रीतिका अवलंबन करके आप अपनी शक्तिको संग्रहीत कीजिये। मनका ढीलापन ही आपकी अवनतिका हेतु है। आप अपनी इच्छानुसार मनसे मनन करानेका यत्न कीजिये। जो विचार आप चाहते हैं, वही मनमें आना चाहिए और मन आपका आज्ञाकारी बनना चाहिये। मन आपके स्वाधीन होनेसे न केवल मुक्तिके मार्गमें आपकी प्रगति होगी, परंतु व्यवहारके इस कृत्योंमें भी आप अपना प्रभाव बता सकेंगे। इस लिये मनकी एकाग्रतासे आपका सर्वतोपरि लाभ होता है। इसकी सिद्धिके लिये आप ऐसा अभ्यास कीजिये कि जिस समय जो कार्य आप करेंगे उसीमें मनको परिपूर्ण लगादेये और उस समय दूसरा कोई विचार पास आने न दें। इस रीतिसे आप अपना व्यवहार करते करते ही अपने मनको एकाग्र कर सकेंगे। आप चाहे अन्य उपायोंका अवलंबन कर सकते हैं। सिद्धिकी [illegible] मुख्य है।

८ अहंकारयोग—अहंकार शब्दसे यहां 'घमंड' इष्ट नहीं है। घमंड बहुत ही बुरी है, घमंडसे अवनति निश्चित होती है। परंतु "अहंकार" शब्दसे और दूसरा भाव व्यक्त होता है। "मैं आत्मा हूं, मैं अजर अमर हूं, मैं शरीरसे भिन्न हूं, मेरी शक्तियां नेत्रादि इंद्रियोंमें जाकर कार्य कर रही हैं। मैं योगसाधनद्वारा अपनी योग्य उन्नति अवश्य प्राप्त करूंगा। मैं विघ्नोंको दूर करूंगा और अवश्य ही पुरुषार्थ करता रहूंगा।" इत्यादि भाव मनमें निश्चयात्मक वृत्तिके साथ धारण करना चाहिये, तभी सिद्धि होती है। इनमें 'अहं' अर्थात् 'मैं' शब्दका प्रयोग होता है। "मैं" यह करूंगा, अवश्य ही करूंगा, इस प्रकार 'मैं-पन' की धारणा करनी होती है, इसलिये इस वृत्तिके अभ्यासको 'अहंकारयोग' कहते हैं। घमंड यहां नहीं होती, परंतु स्वकीय शक्तिके विषयमें निश्चयात्मक वृत्ति होती है। पाठकोंको उचित है कि वे घमंड छोडकर इस प्रकारकी निश्चयात्मक वृत्ति धारण करके "मैं अवश्य योगसाधन करूंगा, मैं नीरोगता और दीर्घायु प्राप्त करूंगा, मैं धार्मिक जीवन व्यतीत करूंगा," इ० निश्चयात्मक वृत्ति धारण करनेका अभ्यास करते रहें। "मेरेसे यह होगा या न होगा" इस प्रकारकी संशयित वृत्तिको कभी अपने पास न आने दें। इस प्रकारके अहंकारयोगसे योगमार्गमें अच्छी प्रगति होती है। कमसे कम योगसिद्धियां प्राप्त करना हो तो इस वृत्तिका आश्रय करना चाहिये। सिद्धियां बुरी नहीं होतीं, सिद्धियोंमें फंसना बुरा होता है। सिद्धि प्राप्त होनेपर उस शक्तिका आप परोपकारके लिये सदुपयोग कर सकते हैं। इस प्रकार करनेसे अधोगतिका भय हट जाता है। सिद्धियोंका दूसरा एक लाभ है कि साधकको अपनी उन्नतिका अनुभव आ जाता है और छोटी सिद्धि प्राप्त होनेसे भी योग-साधनका मार्ग केवल काल्पनिक नहीं है, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है। जब ऐसा हो जावे तब चाहे अपना क्रम उपासक बदल सकता है। योगमार्गमें प्रारभ से अंततक निश्चयवृत्तिसे ही लाभ होता है। इसलिये इस प्रकार निश्चयवृत्तिको बढानेका यत्न करना योग्य है।

(९) ज्ञानेंद्रिययोग—मनुष्यके पास पांच ज्ञानेंद्रिय हैं-(१) नेत्र (२) कर्ण, (३) नासिका, (४) जिह्वा और (५) त्वचा। क्रमशः अग्नि,

आकाश, पृथिवी, जल और वायुके साथ इनका संबंध है। यद्यपि पृथिवी आदि क्रमसे इनका उल्लेख करना योग्य है, तथापि योगशास्त्रके उपयोगकी दृष्टिसे यहां क्रम लिखा है। योगसाधन करनेकी दृष्टिसे नेत्र इंद्रियका इस मार्गमें मुख्य उपयोग है। अन्य इंद्रियोंका उपयोग किया जा सकता है, परन्तु जो बात चक्षुसे साध्य होती है, वह बात इतनी सुलभतासे अन्य इंद्रियोंद्वारा साध्य नहीं हो सकती। इसलिए तेजस्तत्त्व और उसका नेत्र इंद्रिय मुख्य है। मनकी एकाग्रता करनेके लिए नेत्रद्वारा अपनी दृष्टि किसी स्थानपर स्थिर रखनी होती है। वेधक रीतिसे इस प्रकार दृष्टिकी स्थिरता होने लगेगी तो मनकी शक्ति बडी बढ जाती है और प्रयोगसे दूसरोंके मनोंका वशीकरण भी साध्य होता है। इसी प्रकार दूसरे ज्ञानेंद्रियोंके उपयोगसे भी मनकी एकाग्रता साध्य की जा सकती है। परन्तु यह कार्य केवल नेत्रेंद्रियसे करना विशेष हेतुके लिये अच्छा है। अपने पांचों ज्ञानेंद्रियोंको कल्याणके मार्गसे चलाना अत्यंत आवश्यक है। आंखोंसे परिणाममें कल्याणकारक पदार्थको ही देखिये, कानोंसे परिणाममें कल्याणकारक शब्दोंको ही सुनिये और इसी प्रकार अन्य ज्ञानेंद्रियों द्वारा वैसी ही बातें कीजिये कि जो परिणाममें सच्चा कल्याण करनेवाली हो सकती हैं। इसका अभ्यास आपको बडी ही सावधानीके साथ करना अत्यंत आवश्यक है। सब इंद्रियोंको अपने आधीन रखिये और किसीके आधीन आप न रहिये।

(१०) कर्मेन्द्रिययोग—मनुष्यके पास पांच कर्मेंद्रिय हैं- (१) वाक् (२) हाथ, (३) पांव, (४) गुदा और (५) शिश्न। इनमें वागिंद्रियका सबसे अधिक उपयोग इस मार्गमें है। वागिंद्रिय भी आग्नेय इंद्रिय है। मनुष्य प्राणी शब्द बोल रहे हैं, परन्तु बहुत ही थोडे मनुष्य हैं कि जो अपने शब्दोंको विचारपूर्वक प्रयुक्त करते हैं। शब्द एक महती शक्ति है, इसलिये इसका सावधानीसे उपयोग करना चाहिये, अन्यथा बोलनेवाले और सुननेवालेका निःसंशय नाश होगा। योगसाधन करनेवालोंको उचित है कि वे बोलने और लिखनेके समय वैसे ही शब्द उपयोगमें लावें कि जिनका परिणाम अंतमें हितकारक ही होवे। तथा हाथ पांव आदि सब इंद्रियोंद्वारा योग्य ही कार्य किया करें। कोई कर्मका इंद्रिय ऐसे बुरे कार्यमें प्रवृत्त न कीजिये कि जिससे अपना और अन्योंका नाश हो सके।

अपनी आयु एक यज्ञ है ऐसा समझिये और यज्ञमें अपनी किसी शक्ति द्वारा कोई विघ्न न होवे, इसलिये आपसे जितना प्रयत्न हो सकता है उतना प्रयत्न कीजिये।

अपने अंदर जितनी शक्तियां हैं, उनका साराशरूपसे वर्णन ऊपर किया हुआ है। इनसे भिन्न भी अनेक शक्तियां अपने अंदर विद्यमान हैं, परंतु प्रस्तुत विषयके साथ उनका विशेष संबंध नहीं है। इसलिये उनका उल्लेख यहां नहीं किया। अपनी क्रियाके साथ जिनका साक्षात् संबंध है, उनका ही वर्णन विशेषतया ऊपर किया है।

इस पुस्तकको पढनेसे अपने साधनमार्गके साथ पाठकोंका परिचय हो जायगा और उक्त बातोंका विचार करनेसे योगमार्गका निश्चय भी पाठक कर सकेंगे। तथापि उनमेंसे एक एक बातका क्रमशः विचार इस पुस्तकमें आगे किया जायगा।

योगसाधनसे अपनी ही शक्तियोंका विकास होता है। इसलिये क्रियात्मक जीवनकी इसमें मुख्यता है। जो पुरुषार्थ करेगा, उसको ही सिद्धि होगी, अन्यको नहीं। इसलिये पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे इन बातोंको अपने जीवनमें क्रियारूपमें परिणत करनेका यत्न करें।

---

७. प्रसन्नताका साधन

यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि आठ प्रकारका योगसाधन है। योगसाधनका फल स्थूल और सूक्ष्म संपूर्ण शक्तियोंका विकास है। हरएक मनुष्यके पास स्थूल शरीर, सूक्ष्म इंद्रिया, मन, चित्त, बुद्धि आदि पदार्थ हैं। इस हरएक पदार्थमें अनेक भेद हैं। इन सब शक्तियोंका विकास करके उनको अपने आधीन रखना अत्यंत आवश्यक है। उदाहरणके लिये देखिये कि स्थूल शक्तिका अत्यंत विकास पहलवानके शरीरमें होता है। यदि इस शक्तिके साथ उसका मन उत्तम संस्कारोंसे संपन्न हुआ, सब अन्य इंद्रिया भी उत्तम बलवान् होकर उसके अधीन हो गईं और तत्पश्चात् इन सब शक्तियोंका उपयोग उसके

अपने अभ्युदयके लिये तथा जनताकी उन्नतिमें होने लगा, तब ही समझना चाहिये कि उसके कर्मयोगकी उत्तम सिद्धि होगई। नहीं तो बढी हुई शारीरिक अथवा मानसिक शक्ति उसकी हानि करनेके कार्यमें भी प्रयुक्त हो सकती है।

कई लोग योगसाधन करते करते ऐसे पतित होते हैं कि जिसकी कोई सीमा नहीं रहती। इस भ्रष्टताका कारण वही है कि जो ऊपर दिया है। जो लोग स्थूल और सूक्ष्म शक्तियोंका समविकास करनेकी दृष्टिसे योगसाधन नहीं करते और प्राप्त शक्तियोंका अभ्युदय और निःश्रेयसके मार्गमेंही उपयोग करनेका विचार नहीं करते, उनको भ्रष्ट होनेमें देरी नहीं लगती।

साधक और उपासकको इस बातका प्रारंभसे ही विशेष ख्याल रखना चाहिये। अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंका ज्ञान और उसके विकासका साधन करनेका प्रकार प्रथम जानना चाहिये। अच्छे ग्रंथ पढनेके अभ्याससे उक्त अधिकार प्राप्त हो सकता है। साथ साथ अपने शरीरका विज्ञान भी चाहिये। किस अंगके विकासके लिये किस प्रकार अभ्यास करना चाहिये, यह बात ग्रंथोंमें लिखी नहीं होती। योगविषयक ग्रंथ सामान्य तत्त्वोंका उपदेश करते हैं। शेष विचार जो अभ्यास करनेवाला होगा, उसको ही करना चाहिये।

यद्यपि इस पुस्तकमें एक एक बातका विशेष विचार करनेका यत्न किया गया है, तथापि योगसाधन करनेवालोंकी प्रकृतियां इतनी भिन्न होती हैं कि सबके लिये यथायोग्य बात कहना अत्यंत कठिन होता है। इसलिये जो पाठक योगाभ्यास करना चाहते हैं, उनको स्वकीय शरीरका विज्ञान प्रथम प्राप्त करना चाहिये। जो जिसके पास साधन होंगे, उनका उपयोग करके अपने शरीरके आतरिक अंगों और अवयवोंका ज्ञान प्राप्त करनेका यत्न यदि पाठक करेंगे, तो उनका अधिक लाभ हो सकता है। इस पुस्तकमें यद्यपि आवश्यक वर्णन दिया जायगा तथापि इसका जितना अधिक ज्ञान प्राप्त होगा, उतना अधिक लाभ है, इसलिये यहां सूचना दी है।

इस लेखमें पूर्व तैयारीके विषयमें एक मुख्य बात सबसे प्रथम कहनी है, जिसके विना संपूर्ण योगसाधन निष्फल हो सकता है और जिसके होनेसे थोडासा

योगसाधन भी अधिक लाभदायक हो सकता है। वह मुख्य बात 'चित्तकी प्रसन्नता' ही है। हरएक अवस्थामें अपने चित्तको प्रसन्न रखनेका अभ्यास कीजिये। आपकी इच्छासे विपरीत भी कोई बात बन गई तो उस समयमें भी आनंदित रहनेका अभ्यास करना चाहिये। शरीरको कष्ट होते हों, किसी प्रकार की अन्य आपत्तियां आ जावें, कोई अन्य बात अनिष्ट रीतिसे बन गई हो, तो भी आप अपनी चित्तवृत्ति प्रसन्न रखिये। प्रथमतः यह बात आपको हलकी प्रतीत होगी अथवा कदाचित अशक्य भी प्रतीत हो सकती है। यदि आप निश्चय करेंगे, तो आपको स्वयं इस बातका अनुभव हो जायगा कि उक्त बात न तो अशक्य है और न हलकी है। इस वृत्तिके साथ जो योगसाधन आप करेंगे, वह दस गुणा फल आपको दे सकता है।

चेहरेपर हास्यवृत्ति रखनेका अभ्यास करना चाहिये। जो मनकी वृत्ति होती है, वह स्वयं चेहरेपर दिखाई देती है। इसलिये अपना चेहरा कैसा रहता है, इस बातका भी आपको ख्याल करना चाहिये। इस दृष्टिसे आप अपना चेहरा दर्पणमें देखते जाइये और उसको अधिक स्मितयुक्त बनाइए। दुर्मुखता उसपर न रखिये। दो तीन मास आप अभ्यास करते रहेंगे, तो आपके चेहरेपर उक्त स्मितवृत्ति रह सकती है। कई लोग कहेंगे कि अपना चेहरा दर्पणमें देखना पाप है। परंतु उनको ध्यानमें रखना चाहिये कि इसमें कोई पाप नहीं है। पाप तब ही सकता है कि जब उसका उपयोग काम आदि दुष्ट विकारोंके पास झुकनेवाले कार्योंमें किया जावे। इस प्रकार कई लोग कहते हैं कि उत्तम वस्त्रालंकार धारण करना भी बुरा है। परंतु वेदके कथनानुसार सुन्दर वस्त्र और उत्तम अलंकार धारण करना कोई बुरा नहीं है। सदुपयोगसे भलाई और दुरुपयोगसे बुराई होती है। तात्पर्य, अपने आपको हीन, दीन, दुर्बल, मलीन, दुर्मुख कदापि रखना नहीं चाहिये, परंतु उदात्त, प्रौढ, बलिष्ठ, स्वच्छ और प्रसन्न-वदन करनेका यत्न करना चाहिये। बाह्य अवस्थाका परिणाम अपने अंदरकी घटनाओंपर होता है और अपने आंतरिक भावोंके अनुसार अपनी बाह्य परिस्थिति बदलती जाती है, इसलिये आपको इस बातके विषयमें सदा सावधान

रहना चाहिये और अपनी बाह्य प्रसन्नता तथा आन्तरिक प्रसन्नता स्थिर करनेका अवश्य यत्न करना चाहिये। यदि इस बातका विचार प्रारंभमें ही आप न करेंगे तो आपसे योगसाधन यथायोग रीतिसे नहीं हो सकता।

आपको इस प्रारंभिक अवस्थामें किसी बालककी वृत्तिका सूक्ष्म रीतिसे अभ्यास करनेका यत्न करना चाहिये। बालक अपना हो अथवा दूसरेका हो। अपना बालक नीरोग हास्यमुख होगा तो बडा ही अच्छा होगा। न होगा तो किसी अन्य नीरोग बालककी वृत्तिका अभ्यास कीजिये। इस अभ्याससे आपको बडा ही लाभ हो सकता है। जन्मसिद्ध निज आनंद बालकके निष्कपट प्रसन्न मुखपर ही आप देख सकेंगे। बडे लोगोंके अंतःकरण दिखावटी और ढोंगी व्यवहारके कारण बिगडे होते हैं। बालकोंकी वृत्तिमें जो निष्कपट प्रेमकी प्रसन्नता है, वह आपको किसी अन्य स्थानपर नहीं दिखाई देगी। छोटे छोटे बालक किस प्रकार शीघ्र अपने दुःखको भूलते हैं, दुःख देनेवालेके साथ भी किस प्रकार क्षणार्धमें हसने लगते हैं, जो कार्य करते हैं उसमें उनकी वृत्ति कितनी तल्लीन होती है, इत्यादि बातें आप उनके मुखपर देख सकते हैं। आप शुद्ध भावसे नीरोग बालककी वृत्तिका अच्छी प्रकार अभ्यास करेंगे, तो थोडेही दिनोंमें आपको अनुभव होगा कि जो बातें छोटेसे छोटे बालकमें सिद्ध हैं, उन बातोंकी ही न्यूनता आपमें है। फिर आप कहिये कि जो ज्ञानसाधन और पुरुषार्थ आपने इतनी उमर तक किया है, उससे आपकी किस दृष्टिसे उन्नति हो गई है और किस बातमें अधोगति हो गई है? बहुत ही ऐसी बातें हैं कि जो बालकोंकी वृत्ति देखकर बडोंको भी सीखनी चाहिये। यदि यह अभ्यास आप सूक्ष्म दृष्टिसे करते जायँगे, तो योगसाधन करना आपको सुगम हो सकता है। आशा है कि आप अनुभव लेंगे।

---

८. सहज वृत्ति

पूर्व लेखमें लिखा है कि योगसाधन करनेवालोंको बालकके हृदयका अभ्यास करना चाहिये। इस बातका स्वरूप थोडेसे विस्तारसे इस लेखमें बताना है, क्यों कि योगसाधनकी दृष्टिसे इस अभ्यासका अत्यंत महत्व है। जो बालक निरोगी और हृष्टपुष्ट तथा प्रसन्नवदन होता है, उसको ही इस कार्यके लिये लेना उचित है। जो सदा आनंदसे खेलता रहता है, उसके हृदयका ही निरीक्षण करना चाहिये। तथा जिसके मनमें सारासार विचार करनेसे शोक बहुत बढी नहीं है और जो छल, कपट, हठ, आदिमें प्रवृत्त नहीं होता, अर्थात् जो शुद्ध बाल्य स्वभावसे ही युक्त है, उसको अपने सम्मुख रखिये। बहुधा तीन चार वर्षसे छोटी उमरका प्रत्येक निरोग और हृष्टपुष्ट बालक आपकी सहायता कर सकता है। इससे बडी उमरके लडकोंमें हमारे कुसंस्कारोंसे बुरे भाव आना प्रारंभ होता है, इसलिये उन बडे लडकोंका आपको वैसा उपयोग नहीं होगा।

यदि आप सर्वसाधारण बालकोंका निरीक्षण करेंगे, तो आपको पता लग जायगा कि बडोंके कुसंस्कारोंसे बालकोंके कोमल और निष्कलंक हृदयोंमें बुरे भाव उत्पन्न होते हैं। छोटे छोटे बालक भी बडे चातुर्यसे हमारे सब व्यवहारों-का निरीक्षण करते रहते हैं और छल, कपट, हठ, आदि दुष्ट भाव हमारेसे ही सीखते हैं। इसका अनुभव आप सबसे प्रथम कीजिये कि छोटी उमरमें बाल-कोंके अंतःकरण कितने निर्मल होते हैं। जिस प्रकार सुषुप्ति, समाधि और मुक्तिमें जीवात्माकी ब्रह्मरूपता होती है, उसी प्रकार बालककी बिलकुल अज्ञान अवस्थामें भी ब्रह्मरूपता होती है। प्रायः वर्ष दो वर्षकी उमरतक यह शुद्ध अवस्था रहती है। ब्रह्मरूप आत्मस्थितिका दर्शन करनेकी यदि आपकी सदिच्छा है, तो आप इस अवस्थामें बालकका मुख देखिये। वहां शुद्ध आनंदही आनंद आपको दिखाई देगा। भूख और प्यासका शमन होनेके पश्चात् नीरोग बालकको आप देखिये, वहां निर्विषय आनंदकी प्रत्यक्षता आप कर सकते हैं। हम सब विषयोंका सुख जानते ही हैं, परंतु इस बालकके मुखपर जो दिखाई दे रहा है,

वह शब्दस्पर्शादि विषयोंसे प्राप्त होनेवाला सुख नहीं है। वह बालकका आत्मा अभौतिक ब्रह्मरूपतासे आनंदका अनुभव कर रहा है। उसके चेहरेपर जो हास है, वह हमारे हास्यके समान बनावटी नहीं है, दूसरोंकी खुशामद करनेका आत्मघातकी भाव नहीं है, बडोंके सामने हाथ जोडकर रहना और अंदर उनका ही द्वेष करनेकी बनावटी दिलकी अवस्था वहां नहीं है, असत्यकी ओर झुकनेकी वहां प्रवृत्ति नहीं है दूसरेका घातपात करनेके भावका पता भी उसको नहीं है। वह बालक दूसरेका घात करके अपना लाभ करना जानता ही नहीं। इतनाही नहीं, परंतु वह दूसरेका नाश देखना भी नहीं चाहता। चोरी करनेकी इच्छा वहां नहीं होती, तथा चोरी करके छिप जानेका भाव वहां नहीं है। ब्रह्मचर्य और वीर्यरक्षण तो उसको जन्मसे ही सिद्ध है। वहां लालच इतनी कम होती है कि उसकी प्रवृत्ति दान लेनेकी ओर होती भी नहीं। जो पदार्थ आप देंगे उसका वह स्वीकार करेगा, परंतु अपने लिये स्थिर रूपसे रखनेकी कल्पना ही वहां नहीं है। इस प्रकार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पांच यम वहां स्वयं सिद्ध हैं। तीन वर्षके बालकमें इतना आप अनुभव कीजिये, तो आपको आश्चर्य प्रतीत होगा कि वह अप्रबुद्ध अवस्था कितनी शुद्ध और निष्कलंक अवस्था है।

कदाचित् आप कहेंगे कि बालक मलिन रहते हैं, इसलिये उनके पास शुद्धता नहीं होगा। परंतु यह आपका ख्याल ही गलत है। यद्यपि उनका शरीर मलिन रहता है, उनके चेहरेपर मलके आवरण होते हैं, तथापि वह जानता ही नहीं है कि मलिनता क्या है और निर्मलता क्या है। उसका पवित्र अंतःकरण मलिनतासे भी ऊपर है और निर्मलतासे भी परे है। इसीलिये उसका मुख मलिन होनेपर भी उसकी पर्वाह उसको नहीं होती और वह अपने निज आनंदमें ही हंसता रहता है। जब कभी उसको मलिनताकी कल्पना होती है तब ही उसके दुःखका प्रारंभ होता है। इस छोटी आयुमें संतोष और प्रसन्नचित्तका साम्राज्य रहता है। यदि बाहरसे किसी कारणसे असंतुष्टि आ भी गई, तो क्षणमात्रमें पुनः निज रूपमें उसकी स्थिति हो जाती है। तप और

स्वाध्याय ये साधन हमारे लिये ही हैं। बालकको ब्रह्मरूपता सहज प्राप्त है, इसलिये इन साधनोंकी उसको आवश्यकता ही नहीं। इस प्रकार नियमोंकी उपस्थिति वहां है।

यमनियमोंका इस प्रकार आप वहां अनुभव कीजिये। तत्पश्चात् आसन आते हैं। दुराचारके कारण बडे मनुष्योंके शरीर मलिन होते हैं, अंदर नस-नाडियोंमें मलिनता भरी रहती है, इस कारण आसन करनेकी बडे मनुष्योंको आवश्यकता है। छोटे बालकका शरीर निर्मल होनेके कारण उसको आसन करनेकी इस अवस्थामें आवश्यकता ही नहीं रहती। वह अतिभोजन करता नहीं; सभ्यताके सबबसे हमारे समान मलमूत्रके वेगोंको दबाता नहीं, माताने दूध अधिक पिलाया तो पेटसे अधिक दूध वमनद्वारा निकालनेकी शक्ति स्वयं रखता है। इस कारण नसनाडियोंमें मलसंचय नहीं होता। इसीलिये आसनोंकी आवश्यकता उसको नहीं है।

प्राणायामकी विद्या उसको जन्मसे ही सिद्ध होती है। पश्चात् ही तंग कपडे, तंग मकान आदि हमारे कुसंस्कारोंके कारण उसकी वह सिद्धि भूल जाती है। परन्तु आप छः मासका लडका देखिये, कैसा दीर्घ और पूर्ण श्वास लेता रहता है ! उसके समान पूर्ण श्वास बडा आदमी नहीं ले सकता। क्योंकि हमारी सभ्यता के कारण अनेक प्रतिबंध खडे हो गये हैं, जो हमारे प्राणके व्यवहार में बाधा डाल रहे हैं। हमारे कपडे लत्ते, हमारा रहनसहन, हमारा नियमविरुद्ध आचरण, इत्यादि कारणोंसे हमारा श्वास वैसा पूर्ण नहीं होता कि जैसा होना चाहिये। परन्तु बालकमें उक्त अनियम नहीं होते, इसलिये वह पूर्ण श्वास लेता है। यही एक हेतु है कि जिससे उसका मन स्थिर रहता है। क्योंकि प्राणकी चंचलता-के कारण ही चित्तकी चंचलता होती है। प्राणायामादि बडे बडे अभ्यासके पश्चात् जो बात हमको साध्य होती है, वह जन्मसे बालकको साध्य रहती है।

बालकके इंद्रिय स्वैर नहीं होते, विषयोंकी लालसा और वासना उनमें नहीं होती, इस कारण प्रत्याहारकी उसके लिये आवश्यकता ही नहीं है। जिस पदार्थ-

की ओर बालक देखता है, उसमें उसका मन ऐसा जम जाता है कि उस पदार्थ-के भिन्न किसी अन्य पदार्थका विचार उसके मनमें आता ही नहीं। इस प्रकार धारणा और ध्यानकी सिद्धि उसका जन्मसे ही होती है। यदि ब्रह्मरूपावस्था ही समाधि है, तो वह भी उसको सिद्ध ही है। इस प्रकार ब्रह्मरूपावस्थाके लिये अत्यंत आवश्यक योगका साधन दो तीन वर्षतक छोटे बालकको स्वयं सिद्ध रहता है। इसीलिये इस आयुके छोटे बालक सदा ही अद्भुत आनंदमें मग्न रहते हैं। यदि हमारा सब समाज योगियोंका समाज हो जायगा, तो वह बालककी जन्मसिद्ध निजावस्था उससे हटेगी ही नहीं, परन्तु बालकमें जो ज्ञानकी न्यूनता रहती है उतनी दूर होकर वही उत्तम योगी बन सकता है। परन्तु क्या किया जावे ? हमारी जनता ऐसी अवस्थामें पहुची है कि शुद्धहृदय बालकको भी हम ऐसा गिरा सकते हैं कि आगे उसके मनमें आनेपर भी योगका साधन करना उसके लिये असमव हो जाना है।

कई पाठक यहा पूछेंगे कि 'बालककी अज्ञानावस्थाकी इतनी क्यों प्रशसा की जाती है ?' उत्तरमें निवेदन है कि उसकी अज्ञानावस्थाकी उक्त प्रशसा नहीं है, परतु उसकी ब्रह्मरूपावस्थाकी ही प्रशसा है। प्रत्येक प्राणीमात्रको सुषुप्तिमें ब्रह्मरूपावस्था प्राप्त होती है। सुषुप्तिकी ब्रह्मरूपावस्था तमोगुणी होती है, क्योंकि उस अवस्थामें अज्ञान रहता है। उसी प्रकार ज्ञानरहित ब्रह्मरूपा-वस्था इस छोटी उमरमें होती है। यदि यही हृदयकी अवस्था रखकर उचित ज्ञान दिया जायगा, तो उसकी जीवन्मुक्तकी ही अवस्था प्राप्त होगी। समानकी अवस्थापर यह बात निर्भर है। वैदिक कालमें सनत्कुमार आदिकोंको इस प्रकार बालपनसे ही जीवन्मुक्तावस्था प्राप्त हो गई थी। परतु उस प्रकारकी श्रेष्ठ जनता अब कहा है ? उस समय राज्यमें चोर, व्यभिचारी, ठग आदि दुष्ट न थे परतु आजकल प्राय हीन प्रवृत्तिके ही लोग हो गये हैं।

इस प्रकार आप अपने बालककी योग्यता श्रेष्ठ समझ लीजिये। वह अज्ञान है अथवा निर्बल है, इसलिये उसकी उपेक्षा न कीजिये। यदि आप अन्नपोषणादि द्वारा उसकी सहायता कर सकते हैं, तो वह बालक अपनी निज अवस्थामें श्रेष्ठ

बातें प्राप्त करनेके साधन आपको बता सकता है। उसका व्यवहार देखनेकी दिव्य दृष्टि आपमें होगी, तो ही आपको लाभ हो सकता है। अन्यथा हरएक माता-पिता अपने बालबच्चोंका पालन पोषण कर ही रहे हैं, परंतु वहाका चमत्कार देखनेके आख किसको है और कौन उसका निरीक्षण कर रहे हैं? सभीको अपनी प्रौढताकी घमंड है।। परंतु बालकके समान सरल, उच्च और निर्मल हृदय किसके पास होता है? सहस्रों प्रकारके साधन करनेपर भी जो निर्मलता हृदयमें प्राप्त करना अत्यंत कठिन कार्य है, वह निर्मलता बालकके ही अंत करणमें आप देख सकते हैं। बालक टेढेपनको जानता ही नहीं, जबतक आप उसको टेढापन नहीं सिखायेंगे। उसके सब व्यवहार कैसे सरल, निरपद्रवी और निष्कपट प्रेमसे युक्त होते हैं और आपके व्यवहार कैसे कपटी, घातकी और जालोंसे भरे रहते हैं। देखिये तो सही कि जिस चातुर्यके विषयमें किसी दिग्भ्रष्टकी आप तारीफ करते हैं, उसमें इतनी सरलता कहा होती है? जो बातें आपने अपने अंदर बढाई हैं उनके कारण ही आप समाधि नहीं लगा सकते, उनके कारण ही आपमें डर बढ रहा है और सब अशांति फैल रही है।

छोटे लडकोंको आप सरलता नहीं सिखा सकते, क्योंकि वह आपके पास ही नहीं है। चित्तकी एकाग्रता करना आप उनको नहीं सिखा सकते, क्योंकि उनसेभी आपकाही चित्त अधिक चचल है। खेलने आदिके समय जो कार्य बालक करते रहते हैं उस समय उनका मन जैसा पूर्ण एकाग्र होता है और उस कार्यके सिवाय उनको किसी दूसरे बातका बिलकुल ध्यान तक नहीं होता। यदि ऐसा आपका चित्त आपके कार्यमें एकाग्र होता रहेगा, तो आप बीस गुणा अधिक उत्तम कार्य कर सकेंगे। अब विचार कीजिए कि इस दृष्टीसे कौनसी अवस्था श्रेष्ठ है और हम जो अपनी उन्नति मान रहे हैं, उसमें हमारी मानसिक गिरावट कितनी हो गई है?

छोटे बालकको जब कोई अपूर्व पदार्थ प्राप्त होता है, तब उसको कितना आनंद होता है! प्रत्येक पदार्थमें अपूर्वताका अनुभव करनेका गुण बालकोंमें होता है, वह बडोंमें नहीं होता। जिन पुरुषोंमें यह अपूर्वताका अनुभव

करनेका गुण होता है, वे ही कवि और सत्पुरुष हुआ करते हैं। परंतु प्रायः प्रत्येक बालकमें यह गुण होता है, पश्चात् कुसंस्कारोंके कारण यह गुण नष्ट होता है। इस गुणको अपने अंदर बढानेकी अत्यंत आवश्यकता है, क्योंकि आपको भी यदि ब्रह्मरूपावस्था प्राप्त करनी है, तो प्रत्येक पदार्थमें अपूर्व ब्रह्मको ही देखनेका अभ्यास करना चाहिये। बालकका हृदय ब्रह्मरूप होनेसे ही हरएक पदार्थमें उसको अपूर्वताका आनंद प्राप्त होता है। छोटा बालक न समझते हुए जो श्रेष्ठ व्यवहार करता है, वैसा आपको ज्ञानपूर्वक करना चाहिये।

भूल जानेका अभ्यास भी बालकोंमें बडा होता है। किसी समय बालक किसी कारण विशेषसे रोता होगा तो आप झट किसी नवीन चमकीले पदार्थपर उसका चित्त आकर्षित कीजिये। तो एक क्षणमें रोना छोडकर वह हसने लगेगा। इतने थोडे समयमें उसको रोनेका विस्मरण होता है कि आपको भी आश्चर्य होगा। यह बात बडी महत्त्वकी है। इसका आपको अवश्य विचार करना चाहिये। उसका मन निर्लेप रहता है, इसलिये ही बालक ऐसा कर सकता है। वह किसीमें लिप्त नहीं होता, यद्यपि जिसपर मन रखेगा उसमें उसी समय तल्लीन होगा; तथापि कमलपत्रके समान पानीमें डूबता हुआ भी उसका मन गीला नहीं हो सकता। देखते हुआ भी न देखनेकी सिद्धि उसको होती है। कार्य करनेपर भी न करनेकी सिद्धि उसको होती है। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें यही बात कही है। " संग अथवा आसक्ति छोडकर सब कार्य करना चाहिये। " यह बात बालकोंमें ही आपको दिखाई देगी। बालक सब कार्य एकाग्र मनसे करते हैं, परंतु किसीमें उनकी आसक्ति नहीं होती। देखिये, कितनी मनकी शुद्धावस्था है! समाज ही सबका सब ऐसा शुद्ध बनना चाहिये कि जो बालकोंको न बिगाड सके। परंतु यह कैसे हो सकता है? मनुष्य अच्छेको बुरा और बुरेको अच्छा कह रहे हैं और गिरावटमें समाधान मान रहे हैं। प्रतिदिन समता-भाव जाता है और विषम भाव मनमें आ रहे हैं; तथापि बहुत ही थोडे सज्जन ऐसे हैं कि जो इसका विचार कर सकते हैं।

कृत्रिम भेदको बालक जानता ही नहीं। देखिये, इस छोटी उमरमें कितनी सम

दृष्टि होती है। ब्राह्मण-क्षत्रियोंके लड़कोंका निःसीम प्रेम चाण्डालके लड़कोंके साथ भी हो सकता है। ब्रह्मरूपावस्थामें चाण्डालत्व और ब्राह्मणत्व दोनों नहीं रहते। ये हमारे कृत्रिम अर्थात् बनावटी भेद हैं कि जो हमारे लिये प्रतिबन्धक होते हैं। तथापि हम इनको छोड़ नहीं सकते। शुद्ध अंतःकरणकी समता होनेके कारण बालक इन भेदोंको जानते ही नहीं और यदि आप उनको न सिखायेंगे तो उनके अतःकरणकी समता कभी नष्ट नहीं हो सकती। इसी प्रकार बड़ा और छोटा, ओहदेदार और अनधिकारी, श्रीमान् और दरिद्री आदि बनावटी भेदोंको भी बालक नहीं जानते। क्या आपने कभी ऐसे समतासे परिपूर्ण अंतःकरणोंके शुभ और सरल भावोंका विचार किया है? आप कहते हैं कि बालक अज्ञानी हैं और हम ज्ञानी हैं। विचार तो कीजिये कि वास्तविक कौन कैसे हैं। यदि सच्चा विचार करेंगे तो कदाचित् उलटी ही बात सिद्ध होगी।

बाबा आदम और हव्वा (ईव और ईशा) ज्ञानवृक्षका फल खानेके पश्चात् ही स्वर्गधामसे गिर गये। आप सोचिये तो सही कि बालकोंकी ब्रह्मरूपावस्था भी तभी छूटती है कि जब उनको हमारे जैसा ज्ञान प्राप्त होने लगता है। बाबा आदमके समान बालक नंगे रहते हैं, परन्तु स्वर्गमें रहनेके कारण नंगेपनसे ही अनभिज्ञ होते हैं। बालक और बालिकाएं नंगी एक स्थानपर रहेंगी, परन्तु स्वर्गका सुख उनको होगा, मृत्युलोकका विचार उनमें नहीं होता। जगत्‌का संपूर्ण उद्यान उनके लिये स्वर्ग ही है। सचमुच वे बालक मृत्युलोकमें नहीं रहते, वे ब्रह्मलोकका आनंद लूटते हुए सचमुच ब्रह्मलोकमें ही रहते हैं, परन्तु जब उनको हमारा ज्ञान प्राप्त होने लगता है, तब शनैः शनैः खुदा बहिश्तसे नीचे गिरा देता है, तबसे ही उनको अपने नंगेपनकी लज्जा होने लगती है और सब प्रकारके दुःख उनके पीछे लगते हैं।

ईसाई लोगोंको भी अपने ही बाइबलकी कथाका तत्त्व ज्ञात नहीं है। वे शब्दार्थको जानते हुए गर्भितार्थसे बेचारे वंचित ही हैं! पाठकों! बाइबल और कुरान शरीफके बाबा आदम, वे शुद्धहृदय स्वर्गधामके आत्मा, आपके पास हैं, परंतु आपको पता नहीं है। वे आपके ही घरोंमें रहते हुए ब्रह्मलोकका आनंद ले रहे हैं कि जिस समय आप संसारका दुःख अनुभव करते रहते हैं। जिस

*

संसारको आपने कष्टरूप अनुभव किया है, उसीमें बाहिरत (स्वर्ग) का आनंद जो अनुभव कर रहे हैं, क्या उनकी योग्यता आपसे कम है? यदि बालकोंकी वास्तविक अवस्थाका आपको पता लगेगा, तो आप ही उनसे बडा उपयोगी बोध ले सकते हैं।

ज्ञानवृक्षका फल खानेसे बाबा आदम क्यों गिर गया, इसका अब आपको ज्ञान हुआ ही होगा। जिस ज्ञानकी घमंड आप रखते हैं, वह ज्ञान ही आपकी गिरावटका कारण है। परन्तु आपको जाननेकी भी इच्छा नहीं है। विषमय सापके उपदेशसे यह ज्ञान मिलता है, इसमें क्या संदेह है? जिस व्यवहारमें छली, कपटी, ढोंगी और धूर्त ही सबसे श्रेष्ठ समझे जाते हैं, क्या वह सापोंका ही क्षेत्र नहीं है! ये साप शुद्ध हृदयवाले बालकोंको अपनी हीनतासे कैसे गिरा रहे हैं, देखिये और उक्त सब कथाका अनुभव कीजिये। तब आपको ही पता लग जायगा कि न केवल जगत्के प्रारंभमें ही यह घटना हुई थी, परंतु उस कालसे इस समयतक यही घटना हो रही है और भविष्यमें भी होती रहेगी।

यहां हमको बाइबलकी कथाका स्पष्टीकरण करना नहीं है, परंतु बालकोंका निरीक्षण करनेकी दृष्टिका ही थोडासा विचार करना है। बालकोंका परीक्षा यह विषय बडा ही विस्तृत है और इसका आप जितना अधिक विचार करेंगे, उतना आपको अधिक आश्चर्यकारक ज्ञान प्राप्त हो जायगा। इस लेखमें थोडीसी दिशा बताई गई है। आशा है कि इस रीतिसे विचार करके पाठक अपने लिये जो योग्य उपदेश योगसाधनकी दृष्टिसे लेना है, उतना ही लेंगे।

कदाचित् कोई पाठक इस लेखके विषयमें संशय भी करेंगे। उनके लिये यहां इतना ही निवेदन है कि शंका अथवा संशय करनेके पूर्व चार पांच महिने इस दृष्टिसे विचार कीजिये और पश्चात् इसका विरोध करना आवश्यक हुआ तो कीजिये।

अंतमें निवेदन है कि छोटे छोटे बालकोंकी ओर हीन दृष्टिसे देखना छोड दीजिये। वे स्वर्गधामके आत्मा हैं, ऐसा मान लीजिये और कमसे कम यदि आप उनको उच्च नहीं बना सकते तो न सही, उनको अपने कुसंस्कारोंसे न गिराइये। तथा जहांतक हो सके वहांतक सूक्ष्म दृष्टिसे अवलोकन करके उनके

हृदयकी सरलता अपनेमें लानेका यत्न कीजिये। यदि इतनी बात अपने प्राप्त की, तो आप इस लेखकी निंदा नहीं करेंगे।

९. प्राणायामसे लाभ

प्राणायामका आरोग्यके साथ अत्यंत संबंध है। प्राणायामक्रियामें प्राणोंका आयाम करना होता है। नियमन और विस्तारका नाम आयाम है। संपूर्ण प्राणशक्तिका नियमन करना, उस शक्तिको अपने स्वाधीन रखनेका यत्न करना और उसका विस्तार करना प्राणायामका उद्देश्य है। अपनी छातीमें जो फेफडे हैं, उनमें प्राणका स्थान मुख्य है। वहां विश्वव्यापक प्राणशक्ति वायुके साथ नासिकाद्वारा जाती है और रुधिरमें मिल जाती है और रुधिरके साथ सारे शरीरमें पहुंचती है। वह प्राणही हमारी जीवनकला है। इसके विना हमारा जीवन सर्वथा अशक्य है।

फेफडोंके अंदर प्राणका निवास होता है। जितना फेफडोंका विस्तार होगा और जितना अवकाश फेफडोंके अंदर प्राणके लिये प्राप्त हो सकेगा, उतना प्राण हमारे शरीरके अंदर प्रविष्ट हो सकेगा। अर्थात् जिसकी छाती संकुचित होगी, उसमें प्राण कम पहुंचेगा और जिसकी विस्तृत होगी, उसके शरीरमें प्राण अधिक पहुंचेगा। यही कारण है कि संकुचित छातीवाले मनुष्योंको ही क्षय आदिकी बीमारी होती है, वैसी विस्तृत छातीवालोंको नहीं होती। तथा प्राणायामके अभ्याससे जिसके फेफडे बलवान् होते हैं, उसको तो किसी बीमारीका भयही नहीं हो सकता। क्योंकि जिसके शरीरमें विपुल प्राणशक्ति प्रतिदिन पहुंचती रहती है, उसके पास रोग कैसे ठहर सकता है? प्राणही सब रोगोंको दूर करनेवाला है, तथा प्राणही पूर्ण आरोग्य देनेवाला देव है।

लुहारकी धौंकनी पाठकोंने देखी ही होगी। धौंकनीसे वायुका प्रवाह जब अग्निपर पहुंचता है, तब अग्नि प्रदीप्त होता है। और उस प्रदीप्त अग्निमें लोहा भी

पिघल जाता है। इस प्रकार शारीरिक अग्नि प्रदीप्त करनेके लिये परमेश्वरने जो धौंकनी बनाई है, वही हमारे फेफड़े हैं। इनके द्वारा प्राणमिश्रित वायुका प्रवाह ज्यों ज्यों शरीरके अग्निपर चलने लगता है, त्यों त्यों शारीरिक अग्नि प्रदीप्त होने लगता है। शारीरिक अग्नि प्रदीप्त होनेसे ही शरीरका तेज बढ़ता है और क्षुधा आदि प्रदीप्त होने लगती है। इस प्रकार प्राणायामका आरोग्यके साथ संबंध है।

अन्नके बिना मनुष्य तीन मासतक जीवित रह सकता है, जलके बिना अधिकसे अधिक दस बीस दिन रह सकेगा, परंतु शुद्ध वायुके बिना थोड़ेसे क्षण भी रहना प्राणियोंके लिये अशक्य है! इतना वायुके साथ हमारे जीवनका संबंध है। दूसरी बात यह है कि प्रतिदिनका मनुष्यका अधिकसे अधिक भोजन सेर या दो सेर अन्नसे हो सकता है, अधिकसे अधिक दो चार सेर जल प्रतिदिन मनुष्यके लिये आवश्यक हो सकता है; परंतु कई मण हवा प्रतिदिन प्रति मनुष्य अपने अंदर ले रहा है। अर्थात् जहां स्थूल अन्न मनुष्यके लिये प्रतिदिन सेर दो सेर ही पर्याप्त होता है, वहां सूक्ष्म शुद्ध प्राणवायु मनुष्यके लिये प्रतिदिन बीस तीस मणोंसे भी अधिक आवश्यक होता है। इससे पाठक जान सकते हैं कि वायुका महत्त्व कितना है और हमारे जीवनके साथ उसका कितना घनिष्ठ संबंध है।

खाने पीनेके पदार्थ बचानेके लिये जितनी हम सब सावधानी करते हैं, उतनी शुद्ध हवाके लिये नहीं करते। यही मुख्य कारण है कि जिससे विविध बीमारियां बढ रही हैं और आरोग्य नष्ट होनेके कारण आयु क्षीण हो रही है। इसलिये सबको अत्यंत आवश्यक है कि, वे अपने खानपानके पदार्थोंका जितना विचार कर रहे हैं, उससे शुद्ध वायुसेवनका अधिक विचार करें और प्राणायाम द्वारा अपने प्राणस्थानकी पवित्रता बढावें। ऐसा करनेसे दीर्घ आयु और आरोग्य निःसंदेह प्राप्त हो सकता है।

प्राणके दो कार्य हैं। एक फेफड़ों द्वारा सब शरीरमें प्रविष्ट हो कर वहां नवजीवनका संचार करना है। शरीरके अंदर जो जीवनकी ज्योति प्रदीप्त

रहती है, केवल इसीके कारण ही है। इसका दूसरा कार्य रुधिरकी शुद्धि करना है। जो रक्त सब शरीरमें भ्रमण करता हुआ और स्थान स्थानमें जीवनकी कला बढाकर तथा वहांके मलोंको साथ लेकर वहांकी निर्मलता करता हुआ फिर हृदयमें आता है, वह बहुतही मलीन होता है। यह मलिन रक्त जब फेफडोंमें प्रविष्ट होता है, तब उसके साथ शुद्ध वायुका संबंध होनेसे तत्काल पुनः शुद्ध और लाल रंगसे युक्त बनता है। जब यह रक्त शुद्ध होता है, तब यह फिर हृदयमें आकर सब शरीरमें भेजने योग्य हो जाता है। यह क्रम सारे जीवन भर चलता रहता है। रुधिरकी शुद्धतापर ही आरोग्यकी स्थिति निर्भर है। जिसका रुधिर अशुद्ध वह रोगी और जिसका रुधिर शुद्ध वह नीरोग होता है। अर्थात् प्राणवायुसे रुधिरकी शुद्धि, शुद्ध रक्तसे नीरोगता, बल और दीर्घ आयुष्य और नीरोगतासे प्रसन्नता प्राप्त होती है। प्राणायामसे ही यह सब सुसाध्य होता है। इसलिये प्राणायामका महत्त्व अधिक है।

वायु न पहुंचनेसे चूल्हकी लकडियां नहीं जलती और न जली हुई लकडियोंसे सर्वत्र धूआं हो जाता है और सबको कष्ट पहुंचता है। इसी प्रकार प्राणवायुका संचार शरीरमें ठीक प्रकार न होनेसे जठराग्नि मंद होता है, अन्नका पचन ठीक प्रकार नहीं होता, पेटमें वायु ठहर जाता है, पेट फूल जाता है और कष्ट होता है। यही सब रोगोंका मूल है। प्राणायामके द्वारा जठराग्नि प्रदीप्त होता है, इसलिये रोगका सब मूल कारण ही हट जाता है और आरोग्यका पूर्ण आनंद प्राप्त होता है, यह लाभ प्राणायामसे होता है।

रक्तके आश्रयसे जीवन रहता है। जैसा उसका रक्त होगा वैसा ही मनुष्य होगा। इसलिये रक्तशुद्धिके लिये हरएक मनुष्यको अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। हुक्का, तमाखू आदि धूम्रपानके दुष्ट व्यसनोंसे कितने अनर्थ हो रहे हैं, इसकी निश्चित कल्पना इस विचारसे हो सकती है। फेफडोंमें जो रक्त आता है, उसमें शुद्ध हवा मिलनेसे आरोग्य बढता है, परंतु उसमें धुवा मिलनेसे कितनी खराबी होती है, इसका बहुतही थोडे लोग विचार करते हैं। इस धूम्रपानके दुष्ट व्यसनके कारण न केवल तमाखू सिगरेट आदि पीनेवालोंका नुकसान होता है, परंतु उनके

संतानोंमें जन्मसे खूनकी बीमारी और हृदयकी कमजोरी इतनी होती है कि वे शर् हरएक रोगके शिकार बन सकते हैं। यही आजकल अनर्थ हो रहा है। तमाखू पीनेवालोंके साथ जो बठते हैं, उनके नाकमें भी वह धूवा चला जाता है, इस प्रकार न पीनेवालोंके आरोग्यकी भी हानि होती है। इन दुष्ट व्यसनोंमें जो पैसेका नुक्सान है वह और ही है। इस प्रकार लोग अपने घातके मार्गमें अधिक प्रवृत्त हो रहे हैं और अपनी सच्ची उन्नतिके मार्गमें जानेकी इच्छातक नहीं करते! क्या यह आश्चर्य नहीं है?

प्रत्येक श्वासके साथ जितनी अधिक शुद्ध हवा फेंफडोंमें प्रविष्ट होगी उतना अधिक आरोग्य प्राप्त हो सकता है। प्राणायामके अभ्याससे फेंफडोंका भी आकार बढता है और उनकी प्राणधारणा-शक्ति भी बढती है। इसलिये प्राणायामका अभ्यास हरएकको अवश्य करना चाहिये। प्राणायामके अभ्यासको प्रारंभ करनेका उत्तम समय आठ वर्षकी आयुही है। इस आयुमें प्राणायामका अभ्यास प्रारंभ करके, शनै शनै. वह अभ्यास बढाया जावे, तो दस बारह वर्षमें बडीही उत्तम प्राणायामकी सिद्धि हो सकती है। इस प्राणायामकी सिद्धिके साथ इंद्रियसंयम और मन संयम भी सिद्ध होता है। परंतु विधिको छोडकर और अपनी शक्तिका विचार न करते हुए जो प्राणायाम करते हैं, उनका नुक्सान होता है और आरोग्य प्राप्त होनेके स्थानपर रोगही बढते हैं। इस विषयमें सबसे प्रथम यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि प्राणायामोंकी संख्या और प्रत्येक प्राणायामकी अवधि शनै शनै बढानी चाहिये। प्राणायामसे उत्साह प्राप्त होता है, इसलिये प्राणायाम करनेवालेकी ऐसी प्रवृत्ति होती है कि मैं बहुत अभ्यास बढाऊं। परंतु अपनी शक्तिसे अधिक प्राणायाम करनेसे हानि ही होती है। यदि प्राणायाम करनेवाले प्रथम दो वर्ष इस बातका विशेष ख्याल रखेंगे, तो उनका नुकसान कभी नहीं हो सकेगा। अविचारसे ही नुक्सान होता है।

जैसा शरीरका व्यायाम पहिले दिन बहुत करनेसे शरीर दर्द करने लगता है, परन्तु थोडा थोडा व्यायाम प्रतिदिन करनेसे और शनै शनै बढानेसे साल दो सालकी अवधिमें बहुत व्यायाम करनेपर भी शरीर दुखता नहीं, उसी प्रकार प्राणायामका व्यायाम करनेसे फेंफडे और आसपासके सौ स्नायु प्रारंभसे खट्टे हो जाते

हैं। क्योंकि बाहिरके अंगोंकी अपेक्षा अंदरके अंग बडे कोमल होते हैं। यदि इस प्रारंभिक अवस्थामें शक्तिसे अधिक व्यायाम किया जाय, तो अंदरके स्नायु क्षीण होते हैं। इसलिये प्रारंभिक अवस्थामें अपनी शक्तिसे कम प्राणायाम करना चाहिये और दो वर्ष नियमपूर्वक अभ्यासके पश्चात् साधक जो चाहे सो कर सकता है।

प्राणायामके अभ्याससे फेंफडे फैल जाते हैं और यह अभ्यास न होनेसे फेंफडे संकुचित होते जाते हैं। फेंफडोंका विस्तार आरोग्यका साधक और फेंफडोंका संकोच रोगका सहायक है। ये दोनों फेंफडे ऐसे हैं कि नियमपूर्वक योग्य अभ्यास करनेसे बलवान् होते हैं, परंतु नियमविरुद्ध, प्रमाणसे अधिक, अयोग्य रीतिके अभ्याससे किंवा अभ्यासके अभावके कारण वेही फेफडे वहाँ क्षीण होते जाते हैं। इस कारण प्रत्येक मनुष्यको नियमानुकूल प्राणायामका अभ्यास करना अत्यंत आवश्यक है।

पाठक श्वास लेकर देखेंगे, तो उनको स्वयं पता लग जायगा कि श्वास अंदर भर देनेसे छाती फैलती है और श्वास बाहिर छोडनेसे छातीका संकोच होता है। यही छातीका संकोच और विस्तार आरोग्यके साथ विशेष संबंध रखता है। पाठक छातीके चारों ओर रस्सी लगाकर देखें कि अपनी छातीके संकोच और विस्तारमें कितने अंगुलियोंका अंतर है। अर्थात् श्वास छोडनेपर जितना छातीका घेर होता है, उससे कितना अधिक घेर श्वास लेनेपर होता है, यह देखना चाहिये। श्वास और उच्छ्वासके समय की छातीके घेरमें चौबीस अंगुलियोंका अंतर होना चाहिये। जो छोटी उमरमें प्रारंभ करके बारह वर्षतक नियमपूर्वक प्राणायामका अभ्यास करते हैं, उनकी छातीमें श्वासोच्छ्वासके समयके परिधिका अंतर चौबीस अंगुलिया होता है। जिन लोगोंने कभी प्राणायाम किया ही नहीं, उनके श्वासोच्छ्वासके समयकी छातीके विस्तारका अतर चार पाच अंगुलिया ही होता है। जितना यह अंतर अधिक होगा, उतना अधिक लाभ हो सकता है, इसलिये प्राणायामकी ओर पाठकोंका तथा जनताका चित्त आकर्षित होना चाहिये।

श्वास और उच्छ्वासके समयकी छातीके परिधिका अंतर जिस समय कम

होने लगता है, उस समय निःसंदेह समझना चाहिये कि मृत्यु पास आ रहा है; तथा जब बढने लगता है तब समझना चाहिये कि अपनी आयु बढ रही है। जब यह अंतर आठ दस अंगुलियोंसे चौबीस अंगुलितक रहेगा, तब किसी प्रकार मृत्युका भय नहीं होगा। इसलिये प्राणायामको महामृत्युंजय कहते हैं।

जो मनुष्य जवानीमें ही मर जाते हैं, उनकी छातीका विचार करना चाहिये। विस्तृत छातीवाले मनुष्य सौमें पांच भी जवानी में नहीं मरते। यदि सब लोग आठ वर्षकी आयुसे नियमपूर्वक प्राणायाम करेंगे, तो जवानीके मृत्युका भय निःसंदेह हट जायगा।

मनुष्य प्रतिसमय जितना श्वास अपने फेफडोंमें भर सकता है, उतनी ही उसकी ' **श्वसन शक्ति** ' है। यह शक्ति जिस मनुष्यमें जितनी अधिक होगी उतने ही प्रमाणसे उसका आयु, आरोग्य, बल आदि अधिक हो सकता है। प्राणायाम ही एक अभ्यास है कि जिससे यह श्वसनशक्ति बहुत बढ सकती है। दूसरा कोई उपाय इसके लिये नहीं है। जो पहाडी लोग होते हैं, उनको पहाडों पर चढने उतरनेके कारण वारंवार दीर्घ श्वास लेना पडता है, इस कारण उनकी छाती बडी विशाल हुआ करती है। अर्थात् यदि शहरके लोग नियमपूर्वक प्राणायाम करेंगे, तो उनकी भी छाती निःसंदेह विस्तृत होगी।

जो गवय्ये लोग होते हैं, यदि वे सदाचारी होंगे, तो प्रायः उनको छातीके रोग होंगे ही नहीं। इसका कारण स्पष्ट ही है कि उनका गानेका अभ्यास प्राणवायुके निरोधसेही होता है। उनके फेफडोंको पर्याप्त व्यायाम मिलता है, इसलिये उनका स्वास्थ्यभी बहुधा ठीक रहता है। जिनका स्वास्थ्य बिगडता है, उनके दुराचरणमें और अनियममें उनकी बीमारीका मूल होता है।

प्राणायाम करनेसे सभी बीमारियां दूर हो सकती हैं। जो लोग प्राणायामका नियमपूर्वक अभ्यास नहीं करते, उनको बद्धकोष्ठ (कबजी), मंद अग्नि, भूख न लगना, अजीर्ण, अरुचि, ज्वर होनेकी प्रवृत्ति, स्नायुकी दुर्बलता, मज्जातंतुओंकी कमजोरी, सिरदर्द, मस्तकमें अन्य रोग, पाण्डुरोग, रक्तदोष, रक्तहीनता इत्यादि अनेक रोग होते हैं। उनका चेहरा फीका होता है। पेटकी सब बीमा-

रियां, श्वासके रोग और मज्जातंतुके तमाम रोग उनको हो सकते हैं कि जो विधियुक्त प्राणायाम नियमपूर्वक नहीं करते। जो विधिपूर्वक प्राणायाम करेंगे उनका स्वास्थ्य ठीक रहने और उनके मनका उत्साह बढनेमें कोई संदेह ही नहीं है। क्षयरोग जो सब रोगोंका राजा है, जिसका नाम तपे-दिक् है, वह प्राणायाम करनेवालोंके पास आ ही नहीं सकता। जो लोग योजनापूर्वक प्राणायाम करेंगे, उनको जो जो विविध बीमारिया पहिलेसेही होंगी, वे सब उनसे निवृत्त हो सकती हैं। इस प्रकार यह प्राणायामरूपी अद्भुत अमृत योगियोंने निर्माण किया है।

साधारण लोग जिस रीतिसे श्वास लेते हैं, उस प्रकारके श्वास लेनेमें फेफडोंका आधा भाग ही काममें आता है और आधा भाग सदा निकम्मा रहता है। मकानमें जो कमरे सदा बंद रहते हैं, उनमें कूडा और कचरा जमा होता है उसी प्रकार इन अनुपयुक्त फेफडोंके आधे भागमें सब प्रकारके मल, दोष रोगबीज आदि सब विष जमा होता है, वे वहा सडने लगते हैं, दाह कर देते हैं और हरएक रोगके लिये सहायता करनेकी पूरी तैयारी करते रहते हैं। अपने ही मकानमें अपने ही आलस्यके कारण ये अपने ही शत्रु बढते रहते हैं। जो विधिपूर्वक प्राणायाम करेगा, उसके फेफडोंका सब भाग श्वासोच्छ्वासके कार्यमें उपयुक्त होता है। इसलिये वहाके किसी स्थानपर शत्रुओंको ठहरनेके लिये बिलकुल स्थान नहीं मिल सकता। सब फेफडोंके भाग पूर्ण रीतिसे विकसित होते हैं और सब शरीरमें नवजीवनका संचार होने लगता है। इसी लिये समझा जाता है कि प्राणायामका अभ्यास आरोग्य, दीर्घ आयु और बलकी वृद्धि करनेवाला है। यदि प्राणायामके द्वारा श्वसन इंद्रियकी ठीक बलवान् किया जावेगा, तो इसमें कोई संदेह ही नहीं कि प्रतिसैंकडा पचास रोग स्वभावत ही दूर हो जायेंगे और बाकी जो होंगे वे भी दृढमूल नहीं होंगे।

आप यदि नियमपूर्वक और विधिके अनुकूल प्रतिदिन प्राणायाम करेंगे, तो प्रारंभसे ही आपका मानसिक उत्साह और उल्हास बढेगा, निरुत्साह आपके पास कभी नहीं आवेगा, आपके मुखपर हास्य टपकने लगेगा, उदासीनता आपसे दूर भाग जायगी, आपके जीवनमें हो बडा भारी फरक होने लगेगा। आप ही

आश्चर्यचकित हो जायगे कि इस थोडेसे प्राणायामसे कितना आश्चर्यकारक फर्क जीवनमें हो जाता है। आपकी पुरुषार्थ करनेकी शक्ति बढने लगेगी, प्रत्येक अवयवमें कार्यक्षमता आ जायगी, आपका रक्त शुद्ध होने लगेगा, आपके चेहरेपर अधिक लाल रंग चमकने लगेगा, आपके नाखून अधिक लाल दिखाई देंगे, यही आपकी रक्तशुद्धिका प्रमाण है। आपकी थकावट दूर होगी, आपके शरीरमें सर्दी सहन करनेकी शक्ति बढेगी, आपकी पचनशक्ति बढेगी, उत्तम गाढ निद्रा आनेसे आपका चित्त प्रसन्न रहेगा, सिरके विकार दूर होनेसे आप विचारके कार्य करनेके लिये योग्य होंगे, क्रमश आपके श्वासकी दुर्गंधि हटती जायगी और श्वासमें सुगंधि बढेगी, आपकी आवाज अच्छी और निर्दोष होगी, श्वास खांसी दमा जुकाम बल्गम खांसी आदि विकार आपके पास नहीं आयेंगे। छाती फैलने और बढने लगेगी, पीठ गर्दन और छातीके स्नायुओंमें प्रमाणबद्धता आयेगी, शरीरका तेज बढेगा, आपकी दृष्टि निर्दोष होगी और आपके अस्तित्वका निज आनंद आपको प्राप्त होने लगेगा।

प्राणायामसे ब्रह्मचर्यका पालन सुखसाध्य होता है, वीर्यकी स्थिरता होने लगती है, प्राण वश होनेसे मन वशमें होने लगता है। प्राण और मन जहां वश होते हैं, वहां कोई दोष नहीं ठहर सकते, इस लिये शुद्ध आनंद प्राप्त होनेमें बडी ही सहायता होती है। ऋषिमुनि इस प्राणायामको वश करके अमरपनके आनंदमें मस्त हो जाते थे। जो इसका अभ्यास करेंगे, उनको भी यह आनंद प्राप्त हो सकता है।

शारीरिक और मानसिक बल प्राप्तिके साथही आत्मिक बल भी इसीसे मिलता है। ध्यान, धारणा और समाधिकी सिद्धि भी सब प्रकारसे प्राणायाम परही निर्भर है। इस प्रकार स्थूल और सूक्ष्म शक्तियोंका विकास इसके अभ्याससे होता है।

प्राणायाम करनेके समय शुद्ध परमात्माकी प्राणमय शक्तिकी भावना मनमें धारण करनी चाहिये। जिस समय प्राण अंदर जा रहा हो, उस समय मनमें इस बातकी धारणा करनी चाहिये कि विश्वव्यापक प्राणरूपी अमृतका रस मेरे अंदर आ रहा है। जब अंदर कुंभक करना होगा, उस समय समझिये कि इस विश्वव्यापक परमात्मिक प्राणशक्तिका अंश मेरे अंदर स्थिर हो रहा है और उससे मैं अधिक बलवान् हो रहा हूं। जब रेचक द्वारा दूषित प्राणको बाहिर फेंकना हो, उस समय

ऐसी भावना कीजिये कि मेरे सब दोष इसके साथ बाहिर जा रहे हैं और मैं निर्दोष हो रहा हूं। इस प्रकार की भावनाके साथ किया हुआ प्राणायाम बहुतही विलक्षण फल देनेवाला होता है। आशा है कि साधक प्राणायामका अभ्यास विधिपूर्वक करेंगे और लाभ उठायेंगे।

---

१०. प्राणायामकी विशेषता

योगसाधनका प्रत्येक अंग मुख्य है, परन्तु सबसे प्रधान प्राणायाम है। प्राणायामके विना योग वैसाही है कि जैसा आत्माके विना शरीर। प्राणायामसे शरीर, इंद्रिय, मन आदिकी शुद्धता, निर्दोषता और सबलता प्राप्त होती है। युक्तिपूर्वक प्राणायाम करनेसे शरीर और मनका पूर्ण आरोग्य प्राप्त हो सकता है और शरीरमें स्वस्थताभी कायम रह सकती है। दीर्घ आयुष्य प्राप्त करनेके जो अनेक साधन हैं, उनमें प्राणायाम सबसे श्रेष्ठ है। प्राणायामसे वीर्यकी स्थिरता होती है और इसीके अभ्याससे मनुष्य ऊर्ध्वरेता बन सकता है। अर्थात् सुप्रजानिर्माण की शक्तिभी प्राणायामद्वारा प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त मनकी स्थिरता, ध्यानकी सिद्धि और समाधिकी प्राप्ति भी सिद्ध करनेवाला यह सबसे श्रेष्ठ उपाय है। यह समझ लीजिये कि प्राणोंका आयाम होनेसे शरीरकी सभी शक्तियां अपने स्वाधीन होती हैं और उस मनुष्यमें विलक्षण दैवी शक्तिका स्फुरण होता है।

प्राणायामके विषयमें कई लोगोंका यह गलत विचार है कि केवल श्वास अंदर रोकने आदि क्रिया करनाही प्राणायाम है। प्राणायामके समय वायुको अंदर लेना, वहां उसको रोकना और पश्चात् उसको बाहर फेंकना होता है। परन्तु केवल वायुही प्राण नहीं है। जो समझते होंगे कि केवल यह वायुही हमारा प्राण है, वे अशुद्ध विचार मनमें धारण करते हैं। वास्तविक यह है कि परमात्माकी विश्वव्यापक प्राणशक्ति सूर्यके द्वारा इस वायुमें स्थिर की जाती है, उसका अपने अंदर स्वीकार करना प्राणायाम मुख्य उद्देश्य है। जो इस बातको नहीं जानते,

उनको प्राणायामसे उतना लाभ नहीं हो सकता कि जितना होना चाहिये। प्राणायाम करनेके समय मनकी दृढ भावना ऐसी करनी चाहिये कि "विश्वव्यापक प्राणको मैं अपने अंदर स्थिर कर रहा हूं, मेरे सब अंगों और अवयवोंमें वह प्राणशक्ति पहुंच रही है और वहां नवीन जीवन उत्पन्न कर रही है। प्राणायामसे मेरे सब दोष दूर हो रहे हैं और मेरी पवित्रता हो रही है।" इस भावनाके साथ किया हुआ प्राणायाम बडाही लाभदायक होता है।

श्वास, श्वासका निरोध और उच्छ्वास येही प्राणायामके तीन अंग हैं। प्राणका नासिका स्थान है, इसमें भूल नहीं होनी चाहिये। श्वास और उच्छ्वास नासिका सेही करना चाहिये। कभी भूलसेभी मुखद्वारा श्वासोच्छ्वास करना नहीं चाहिये। विशेष प्रकारके, विशेष अवस्थामें करने योग्य प्राणायामोंको छोडकर बाकी सभी प्राणायाम तथा सार्वकालिक श्वासोच्छ्वासक्रिया निश्चयसे नासिकासे करनी चाहिये। नासिकासे किया हुआ श्वासोच्छ्वास आयुष्य और निरोगता बढाता है, परन्तु मुखसे किया हुआ श्वासोच्छ्वास आयुष्यको क्षीण करता हुआ रोगोंको भी बढाता है।

बहुत लोग ऐसे होते हैं कि जो अपनी नासिकाको साफ और स्वच्छ नहीं रखते, उसमें बलगम आदि भरा रहता है, इसलिये उनका नाक सदा बंदही रहता है। जब नाक बंद होता है, तब मुखसेही उनका श्वासोच्छ्वास चलता है। नाक सदा बंद रहनेके कारन उनको नाकसे वारंवार "गुं, घुं," ऐसा बहुत बुरा शब्द करनेका अभ्यास हो जाता है। कइयोंका यह बुरा अभ्यास यहांतक कष्टदायक होता है कि उनके पास बैठना दूसरोंके लिये कठिन हो जाता है और सभाओंमें भी उनके इस प्रकारके कर्णकठोर शब्दसे लोगोंको बडी तकलीफ होती है। परन्तु उनको इस बातका पता तक नहीं होता। उनको उचित है कि वे अपना नाक सदा स्वच्छ रखें और प्रयत्नके साथ मुख बंद रखते हुए नासिकासे ही श्वासोच्छ्वास करें। प्रथम आरंभमें थोडासा कष्ट होगा, परन्तु थोडेही दिनोंके पश्चात् उनका श्वास नाकसेही चलता रहेगा।

बालपनमें माता पिता ध्यान नहीं धरते, इसलिये कई बच्चे मुखसे श्वास लेने लग

जाते हैं, सोते समय मुख खोलकर सोते हैं और जो मुख खोलकर सोते हैं, उनको मुखसे ही श्वास लेनेका बुरा अभ्यास होता है। इस प्रकार बचपनमें ही बीमारियोंके स्वागतकी तैयारी होती है। ये जब तरुण होते हैं, तब इनको मुख खुला रखकर श्वास लेनेका ही अभ्यास रहता है और इस रीतिसे बीमारियां बढ जाती हैं। जागते हुए अथवा सोते हुए जब लडका मुख खुला रखता है, तब उसका मुख बंद करना चाहिये। ऐसा वारंवार करनेसे उसका मुख ठीक रहने लग जाता है और उसका श्वास नासिकासे होने लग जाता है। बालपनमें जुकाम होनेके कारण नाक बंद हो जाता है, उस कारणभी लडके मुख खुला रखते हैं। इस समय मातापिताको चाहिये कि उनका नाक वारवार साफ करते रहे ताकि नाक साफ रखनेका अभ्यास उन बालकोंको भी हो जावे।

यही बचपनका अभ्यास बडी आयुमें भी रहता है और बडे बडे शिक्षित और चतुर लोक मुख खोलकर ही श्वास लेते रहते हैं और अपनी ही आयुका नाश करते हैं। इनको उचित है कि वे इस बुरे अभ्यासको छोड देवें। नाक अंदरसे भी स्वच्छ करना चाहिये। जो प्राणायामका अभ्यास करना चाहते हैं उनको उचित है कि वे अपनी नासिकाको अंदरसे भी स्वच्छ और निर्मल करनेका यत्न करें। कुएका ताजा शीत जल कटोरीमें लेकर नासिका द्वारा अंदर खींचनेका अभ्यास करनेसे नाककी आतंरिक पवित्रता हो जाती है। एक ओरके नासिकाछिद्रको बंद करके दूसरे नासिकाछिद्रसे पानी अंदर खींचनेका यत्न करना चाहिये। जोरसे नहीं खींचना परंतु शनैः शनैः खींचना चाहिये। यदि जोरसे खींचा जायगा तो संभवतः सिरमें थोडी देर तक पीडा होगी। यद्यपि इस पीडासे कोई हानिकर कष्ट नहीं होते, तथापि इस प्रकार अविचारसे खींचना भी एक बुरी ही बात है। यह पानी नाकसे पीनेका अभ्यास बहुत ही सुगम है और अनुभवसे देखा है कि योग्य रीतिसे समझानेपर छोटे छोटे लडके भी सुगमताके साथ इस प्रकार पानी पीते हैं और उनको बहुत फायदा भी होता है।

प्रतिदिन सबेरे उठते ही कुएका पानी निकालकर उसको छान कर पीना चाहिये। आवश्यकतानुसार कम अथवा अधिक पीनेमें भी कोई हानि नहीं है।

मलका पानी जहां अधिक गर्म अथवा अधिक ठंडा नहीं होता, वहां लेनेमें कोई हानि नहीं है। तात्पर्य यही है कि कृत्रिम रीतिसे बना हुआ अधिक उष्ण अथवा अधिक ठंडा पानी नहीं लेना चाहिये, जो हानिकारक होता है। स्वाभाविक कुएके पानीकी जितनी ठंडक होती है, उतनी ही अच्छी होती है। इस पानीमें थोडासा नमक डालनेसे भी वह अधिक गुणकारी और शुद्धिकारक होता है।

नकसीरके लिये यह जलपान सर्वोत्तम उपाय है। जब नाकसे खून बहने लग जाता है, उसी समय ठंडा पानी नाकसे पीनेसे तत्काल नकसीरका खूनका प्रवाह बंद हो जाता है। नाकमें फोडे फुनसी आदि विकार होते हैं और बडी बदबू फैलती है, तथा नाकमें खुष्कीसी मालूम होती है और बारबार नाकमें सख्त पदार्थ जम जाता है और अनेक प्रकारके कष्ट होते हैं, उन सबकी निवृत्ति इस प्रकारके नासिकाद्वारा जलपान करनेसे होती है। बहुतसे सिरदर्द और मुखरोग, नासिकारोग, पेटकी कब्जा आदि, खुष्की, सुस्ती आदि अनेक व्याधियोंका शमन इस प्रकारके नासिकाद्वारा किये जलपानसे होता है।

दोनों नासिकाके छिद्रोंको इस प्रकार निर्मल और शुद्ध करनेसे नासिका द्वाराही प्राण संचार करने लग जाता है और एक प्रकारका विलक्षण आनंद प्राप्त होता है। प्रारंभमें इस प्रकार दिनमें दो चार चार करनेसे नासिका निर्मल हो जाती है और प्रतिदिन प्राणायामका अभ्यास करते रहनेसे फिर कभी नासिकामें मलका संचय नहीं होता।

जिनकी नासिका हमेशा जुकामके कारण बिल्कुल बंद हो जाती है और उस प्रकार पानी पीना भी मुश्किल हो जाता है, वे यदि नरम रस्सी उत्तम घीमें भिगाकर नाकमें दो चार बार डालेंगे, तो नासिकाका द्वार खुल जाता है। इस कार्यके लिये वडके छिल्केमें जो अंदर लंबे धागे होते हैं, उनकी नरम और बारीक रस्सी बनाकर रख देनी चाहिये। जिसके इधर उधर बारीक धागे न हों और जो सीधी सरल, बिना ग्रंथि आदिके बनी हुई, रस्सी होवे। नाकमें यह रस्सी थोडी थोडी डालनेसे प्रथम दो चार छींके आ जाती हैं, पश्चात् वह रस्सी आगे जाती हुई कंठ तक पहुंच जाती है। थोडा थोडा अभ्यास करनेसे

नाकमें डाली हुई रस्सी कंठके द्वारा मुखमें लेकर बाहिर निकाली जा सकती है सावधानीसे इसको करना उचित है। यद्यपि इसमें कठिनता कुछ भी नहीं है तथापि असावधानीके कारण कष्ट हो सकते हैं।

कई लोग नाकको साफ करनेके लिये नस्वारका प्रयोग करते हैं, परंतु य नस्वारका उपयोग बहुतही घातक है। इसलिये योगाभ्यास करनेवाला को मनुष्य कभी नस्वारका उपयोग न करे, इतनाही नहीं परंतु किसी प्रकारसे तमाखूका सेवन कभी न करे। अन्य किसी प्रकारका धूम्रपान-अथवा अपेयपान न करे। तमाखू पीने अथवा खानेवालेके शरीरमें तो विष पहुंचही जाता है परंतु इस तमाखूके विषका इतना भयानक परिणाम होता है कि उसके लडकोंमें भी विविध व्याधियाँ जन्मसे रहती हैं। अस्तु।

उक्त प्रकार नाक निर्मल और स्वच्छ रखनेके पश्चात् नाकसे ही हमेशा श्वासोच्छ्वास करनेका यत्न करना चाहिये। प्राणायामका अभ्यास जो सज्जन नियमपूर्वक करना चाहते हैं, उनको विशेषतः अपनी नासिकाकी निर्मलताका ख्याल अवश्य रखना चाहिये। यहां कई पूछेंगे कि नाकसे श्वास लेनेका इतना महत्त्व क्या है? और मुखसे लिया हुआ श्वास इतना हानिकारक क्यों होता है? इसके उत्तरमें बहुत कुछ कहा जा सकता है, परंतु सारांशरूपसे यहां इतनाही समझ लीजिये कि नाकमें परमेश्वरने जितनी छाननियाँ बनाई हैं उतनी मुखमें नहीं हैं। नाकमें बाल हैं, उनके कारण हवाके साथ कोई दूसरा पदार्थ अंदर नहीं घुस सकता। मुखमें कोई वैसे बालोंके जाले नहीं, इसलिये मुखके द्वारा लिये हुए श्वासके साथ सैंकडों अशुद्ध पदार्थ फेंफडोंमें पहुंचकर रुधिरमें मिलकर रोग उत्पन्न करते हैं। तथा नाकमें श्लेष्मा रहता है, उसपर हवा टक्कर खाती है और उस समय हवाके साथ जो जो छोटे छोटे कृमि आदि अंदर घुसनेका यत्न करते हैं वे उस श्लेष्मामें चिपक जाते हैं और श्लेष्माके साथ वे बाहर ही फेंके जाते हैं। इस प्रकारके उचित प्रबंध नाकमें हैं, क्योंकि नाक ही श्वास लेनेके लिये योग्य बनाया गया है। इस प्रकारके प्रबंध मुखमें न होनेके कारण मुख श्वासोच्छ्वास करनेके लिये सर्वथा अयोग्य है। इसलिये विशेष सावधानताके साथ नासिकाद्वारा ही श्वास लेना चाहिये।

नाकसे श्वास लेनेका अभ्यास होनेपर भी श्वासोच्छ्वासकी रीतिका थोड़ासा यहां विचार करना आवश्यक है। छातीमें दोनों तरफ अनेक पसलियाँ हैं। आप अपना हाथ छातीपर घुमाकर अनुभव कीजिये कि छातीसे कमरतक दोनों ओर ये पसलियां कैसी हैं। इनके अंदर छातीके दायें और बायें भागोंमें दो फेंफड़े हैं। अपने विषयके सुभीतेके लिये समझ लीजिये कि इस प्रत्येक फेंफड़ेके तीन भाग हैं। पहिला भाग गलेकी ओर है, बीचका भाग छातीके मध्यमें है और नीचला भाग पेटकी ओर है। साधारण लोग जो श्वासोच्छ्वास करते हैं, वे पहिले अर्थात् गलेके पासवाले फेंफड़ोंके हिस्सेमें ही करते हैं और इसी कारण फेफड़ोंके नीचले भाग काममें आते ही नहीं। जो भाग काममें नहीं आता है, वह निकम्मा रहनेके कारण बिगड़ने लगता है और जहाँ बिगाड़ शुरू होता है, वहां विविध बीमारियाँ अपना स्थान जमा लेती हैं।

यही कारण है कि छातीकी बीमारियां, प्राणायामका अभ्यास कम होनेके कारण प्रतिदिन बढ़ रही हैं। अब पाठकोंके ध्यानमें आया ही होगा कि फेंफड़ोंके नीचले और बीचवाले भागमें प्रथम हवा पहुंचनी चाहिये। तभी पूर्ण श्वास हो सकता है। यह पूर्ण श्वास ही आरोग्यवर्धक है, अधूरे श्वास हानिकारक हैं। इसलिये साधारण श्वास लेनेके समयमें भी ऐसी सावधानता रखनी चाहिये कि पेटके तरफका फेंफड़ेका नीचला भाग भी काममें आ सके। प्राणायामका अभ्यास करनेके पूर्व उसकी यह तैयारी अवश्य करनी चाहिये, इसलिये यहां विस्तारपूर्वक इस बातका स्पष्टीकरण किया है।

प्राणायामकी पूर्व तैयारीका अभ्यास करनेके लिये चाहे आप खड़े रहिये, चाहे बैठ जाइये दोनों अवस्थाओंमें आपकी पीठका पृष्ठवंश सीधा सम रेखामें रहना चाहिये और गला भी सीधा समरेखामें रखना चाहिये। अब आप दीर्घ श्वास लेनेका यत्न कीजिये और सबसे प्रथम फेंफड़ोंके नीचले भागमें हवा भरनेका यत्न कीजिये। प्रारंभमें पेटको अंदर न दबाइये। यदि पेटको अंदर दबायेंगे और ऊपरकी छातीको फैलायेंगे, तो केवल ऊपरकी छातीके भागमें ही हवा पहुँचेगी, इस कारण आपको उचित है कि श्वास लेनेके समय आरंभमें पेट ढीला रखिये और फेंफड़ोंके नाचेके भागमें हवा पहुंचाइये। थोड़े ही अभ्यासमें आपको उक्त बातका पता लग जायगा।

यदि आपको अनुभव लेना है तो अपना हाथ पेटपर रखिये और श्वास अंदर लीजिये । आपके हाथको पता लग जायगा कि अंदर हवा आ रही है। जब आप श्वास बाहिर फेंकेंगे, तब भी आपके हाथको पता लग जायगा कि हवा बाहिर जा रही है । तात्पर्य श्वासका प्राणवायु सबसे प्रथम फेंफडोंके नीचले भागोंमें पहुंचना चाहिये, तत्पश्चात् बीचके भागमें और सबसे पश्चात् फेंफडोंके ऊपरके भागमें श्वास पहुचने लगेगा, तभी छाती फैलनी चाहिये।

श्वास बाहिर निकलनेके समय भी शनैः शनैः निकलना चाहिये और सभी श्वास पूरा बाहिर फेंकना चाहिये । श्वास लेने अथवा बाहिर छोडनेके समय एक ही वेगसे काम करना चाहिये । धक्के देनेसे फेंफडे कमजोर हो जाते हैं।

इस प्रकार नियमपूर्वक और सावधानीके साथ अभ्यास करनेसे प्राणायामकी पूर्व तैयारी होती है । आप अपना श्वास कैसा चल रहा है, इसका विचार कीजिये और कैसा चलना चाहिये इसका निश्चय कीजिये, तो आपको ही स्वय पता लग जायगा कि किस प्रकारसे यह प्राथमिक अभ्यास करना चाहिये । आशा है कि आप इस प्रकार अपनी पूर्व तैयारी करेंगे ।

---

११. आसन और प्राणायामके विषयमें मेरा अनुभव

(लेखक- पं० अभयदेव शर्मा ।)

योगसाधनकी सारी बातें अनुभवकी हैं। केवल तर्क से जो लोग योगकी प्रक्रियाओंका खण्डन अथवा मण्डन करनेकी इच्छा करते हैं, वे न केवल स्वय भूलपर रहते हैं, प्रत्युत पाठकोंको भी उल्टे मार्गपर चलानेका पातक उठाते हैं। मैंने कई लोगोंके योगविषयक लेख पढे और व्याख्यान तथा वार्तालाप सुने, उनसे मुझे यही बात प्रतीत हुई कि जो अनुभवी पुरुष अपने अनुभवकी बात लिखते या बताते हैं, वह तो सदा सर्वदा एक जैसी ही होती है, परन्तु अपना अज्ञान छिपानेके लिये जो लोग, अनुभव न प्राप्त कर केवल तर्काडम्बरसे ही

बातें लिखते और कहते रहते हैं, उनसे सत्य धर्मके प्रचारमें बड़ी ही हानि हो रही है। इसलिये जैसा कि मेरा प्रारम्भसे ही विचार रहा है, मैं यहां केवल उतनी ही बात लिखने और कहने लगा हूं, जितना कि मुझे साफ अनुभव हुआ है।

इस लेखमें मैं आसन और प्राणायामकी कुछ वह बात प्रकाशित करनेका यत्न करूंगा, जिसका कि अनुभव मैंने अपने शरीरपर गत दो तीन वर्षोंमें देखा है। मुझे विश्वास है कि जो मनुष्य आसन और प्राणायाम करेंगे, उनको भी इसी प्रकार अनुभव आ सकता है। इसमें किसी प्रकारका धोखा नहीं है। मेरा यह अनुभव है कि जो लोग नियमविरुद्ध आचरण करते हुए प्राणायामादिक क्रियाओंका अनुष्ठान करनेकी चेष्टा करते हैं, उनके शरीरपरही विरुद्ध परिणाम दिखाई देता है। परन्तु जो मनुष्य आहार, विहार, तथा अनुष्ठान योग्य विधिपूर्वक सुनियमोंके अनुसार विचार कर करते हैं और असयम या हठके वश अनियम में प्रवृत्त नहीं होते, उनको योगसाधनसे कभी नुकसान उठाना नहीं पड़ता। इसलिये पहिली बात यही है कि जो लोग योगसाधनसे अपनी सब प्रकारकी उन्नति करना चाहते हैं, उनको उचित है कि वे किसी प्रकारके अनियममें प्रवृत्त न हों। आहार, विहार और अन्य कर्मोंमें विचारपूर्वक दृढतासे सुनियमका पालन करनेसे ही योगाभ्यास लाभदायक होता है परतु जो मूर्खता व हठके कारण अनियममें व्यवहार करते हैं, उनको योगाभ्याससे बड़े कष्ट होते हैं।

योगसाधन करनेकी ओर मेरी बहुत दिनोंसे प्रवृत्ति थी। परतु साधनके अनुष्ठानका प्रारभ सवत् १९७४ तक नहीं हुआ। मुझ बाल्य अवस्थासे ही कोष्ठ बद्धता (कब्ज) का रोग था। यह सभवतः पैतृक, अर्थात् जिसको वैदिक परिभाषामें 'क्षेत्रिय' कहा जाता है, था। मेरी बद्धकोष्ठता यहांतक भयानक अवस्था तक पहुच चुकी थी कि मुझे बडीही कठिनतासे एक सप्ताहमें अधिकसे अधिक दोवार शौच आया करता था।

मेरा अध्ययन कांगड़ी गुरुकुलमें हुआ है और मैं इसी विश्वविद्यालयका

स्नातक हूं। इस गुरुकुलका स्थान गंगाके पवित्र तटपर है और यद्यपि यहांका जल वायु तो मेरे अनुकूल सिद्ध नहीं हुआ, तथापि यहांका नगरोंसे खुला शुद्ध वायु अवश्य ही स्वास्थ्यप्रद होना चाहिये था।

भागीरथीका निसर्गनिर्मल पवित्र जल, हिमालयकी परिशुद्ध वायु, तथा गुरुकुलका सात्विक भोजन और सबसे बढकर स्वास्थ्य-रक्षाके नियमोंका ठाक ज्ञान मिलनेपर भी मेरी बद्धकोष्ठता हटी नहीं और प्रतिदिन बढती ही रही, इससे पाठकोंको पता लगेगा कि इस जन्मप्राप्त बीमारीका वेग मेरे शरीरमें कितना प्रबल था। मुझे विश्वास है कि यदि मैं गुरुकुलभूमिमें न होता और किसी अन्य नगरमें विद्याभ्यास करता, तो इस बद्धकोष्ठताके कारण मेरा जीवन शीघ्रही समाप्त होनेमें कोई संदेह नहीं था।

नियमपूर्वक रहनेपर भी किसी किसी समय एक एक सप्ताह भरमें एक वार भी शौच नहा होता था, अतमें बस्ति (एनिमा) से शौच करना पडता था। पाठक कदाचित् कल्पना कर सकते हैं कि जिसको आठ आठ दिन शौच न होता हो, उसको कितना कष्ट अनुभव करना पडता है। दिनमें एकवार खुली रीतिसे शौच आना, उत्तम स्वास्थ्यका चिन्ह है। दिनमें अधिक वार शौच आना अथवा सप्ताहभर शौच ही न होना, अस्वास्थ्यका ही लक्षण है। इस प्रकार भयंकर बद्धकोष्ठताके कारण किसी समयमें भी मुझे स्वास्थ्यका सुख नहीं हुआ।

मेरा चित्त सदा ही उत्साहरहित, म्लान और उदासीन रहता था। भूख क्या पदार्थ है, मुझे पता नहीं था, क्योंकि मुझे कभी भूख लगती ही नहीं थी। भूख न लगनेके कारण अन्नकी रुचि प्रतीत नहीं होती थी। कितना भी उत्तम अन्न क्यों न बनाया गया हो, मुझे वह कभी स्वादु नहीं लगता था। भूखके विना अन्नका आनंद कैसे प्राप्त हो सकता है? इस प्रकार खुला शौच आनेका नाम नहीं, भूख नहीं, अन्नकी रुचि नहीं, ऐसी नित्य अवस्था रहनेके कारण अन्नका पचन भी नहीं होता था और पचन न होनेके कारण शरीरमें रुधिर बनता नहीं था, इस लिये मेरा शरीर रक्तहीन पांडुरोगीके समान सदा शुष्क, फीका और निस्तेज रहता था।

इन कारणोंसे मन सदा उदासीन और उत्साहहीन रहता था, स्वभाव भी

बहुत ही चिड़चिड़ा था, सब कुछ बुरा ही बुरा लगता था, किसी समय स्वास्थ्यके आनंदका मुझे अनुभव नहीं होता था। सिरदर्द तो मेरा प्रायः साथी ही था। कभी कभी यह सिरदर्द इतना अधिक होता था कि उसके कारण मुझे कुछ भी सूझता ही नहीं था। उसके पश्चात् ज्वर भी हो जाया करता था।

यदि मैं खानपान आदि सारे विषयोंमें अत्यधिक सावधानता न रखता तो मेरी अधिकही दुर्दशा होती। परंतु मैं सदा ही असाधारण सावधानता रखता था, इसलिये केवल नियमपूर्वक रहनेके कारण हरएक व्याधि मर्यादासे अधिक बढ़ती नहीं थी। इतने नियमपूर्वक व्यवहार करनेपर भी, मुझे इस कब्जी के कारण एक वर्षमें छ मास रोगीके रूपमें रहना पड़ता था। इस कारण सब कोई मुझे " रोगी घरमें रहनेवाला " करके जानता था, मुझे भी यह अपनी अवस्था देखकर बड़ा दुःख होता था, परंतु करता क्या ?

सब गुरुजन मेरे लिये बड़ी चिंता रखते थे और गुरुकुलके डाक्टरसाहब हृष्टपुष्ट करनेके लिये विविध औषधें देते रहते थे और शास्त्रके अनुसार बहुतही प्रकारके उपाय और इलाज करते थे, परंतु मेरी अवस्था बहुत कुछ अगड़ वैसीही रहती थी। वहांके डाक्टरसाहब महोदयजीने जितने प्रयत्न और नये नये उपाय मेरे लिये किये, उतने शायद किसीके लिये भी उनको न करने पड़े होंगे ॥

एक बार, मुझे पूरा स्मरण है कि पूरी तरहसे रोग दूर कर डालनेके लिये विशेषतया मेरी चिकित्सा प्रारंभ हुई। मैं ९ महिने तक चार पाईपर पड़ा रहा, विविध प्रकारके कटु, तिक्त, अम्ल आदि विविध रसरूपी औषध सेवन करता रहा और चिकित्सक की आज्ञानुसार तोलकर अन्न लेता रहा। परंतु मेरी कब्जीके साथ युद्ध करते करते अन्तमें डाक्टर ही पराजित हुए और मेरा रोग जैसाका वैसाही रहा !!! इसको कहना चाहिये रोग और ऐसेही रोगीको कहना चाहिये रोगी !!!

पश्चात् मुझे लाहौरमें भेजा गया और वहांके सुप्रसिद्ध डाक्टरों का इलाज कराया गया। ऐसे ऐसे बड़े बड़े डाक्टर लाये गये कि जो प्रतिसमय दस बीस २० पंद्रह लेनेकी योग्यता रखते थे। उनके चिकित्सानोंके पीछे पीछे दुखद धन

गये। इतनी दवाइयाँ मेरे पेटने हजम कर लीं और अंतमें सब डाक्टरोंका पराभव करके मेरे बद्धकोष्ठ (कब्ज) का ही विजय हुआ !!!

यह सब देखकर मुझे तथा अन्योंको मेरे जीवनके विषयमें बडीही निराशा हो गयी थी। मेरी कब्जी किसी औषधसे दूर नहीं हो सकती और इसके साथ ही मेरे शरीरकी समाप्ति होनी है, यह सर्वसंमतिसे निश्चय हो चुका। अंतमें बिलकुल निराशाकी अवस्थामें मेरे पिताजी द्वारा मेरा हमीरपुर ले जाना हुआ। इस समय मेरी शारीरिक दुर्बलता इतनी बढ गई थी कि यह रेलका सफर बडीही कठिनतासे निर्विघ्न पूरा हुआ। खैर! वहाँ जानेके पश्चात् एक सिविल सर्जनका इलाज शुरू हुआ। परंतु उससे कोई लाभकी आशा न बँधी। इसके पश्चात् एक युनानी हकीमका औषध शुरू हो गया, इससे बहुत कुछ लाभ प्रतीत हुआ। मैं चारपाईसे तो उठ खडा हुआ, परंतु इनके औषधियोंका प्रभाव शरीरमें देरतक स्थिर न रह सका।

दस बारह वर्ष इस प्रकार निरंतर औषधियोंके रस पीते पीते मुझे औषधियोंसे सख्त घृणा हो गई थी। अब औषधियोंके विना आरोग्य प्राप्त करनेके साधनोंकी तरफ मेरा विचार रहने लगा। औषधियोंपर विश्वास हट जानेके कारण डाक्टरों और वैद्योंके पास जाना मैंने बंद किया और जलचिकित्सा शुरू की गई। इससे लाभ अवश्य हुआ, किन्तु चिकित्सा छोडकर कुछ दिनों बाद फिर वैसी ही अवस्था हो जाती थी। तात्पर्य, स्थिर रूपसे लाभ जलचिकित्सासे भी नहीं हुआ।

जब इस प्रकार स्थूल चिकित्साओंमें मैं निराश हो गया, तब मेरी रुचि योगसाधनकी सूक्ष्म चिकित्सामें बढने लगी। शनैः शनैः मैंने व्यायामके साथ योगके आसनोंका अभ्यास प्रारंभ किया। शीर्षासन, मत्स्यासन, उष्ट्रासन, गोमुखासन, सर्पासन, मयूरासन आदि विविध प्रकारके आसन प्रतिदिन करने लगा। शीर्षासन तो आधा आधा घंटा तक करने लगा और समयके अनुसार अन्य आसन भी नियमानुसार करने लगा। शीर्षासन आदिका अच्छा अभ्यास करनेके लिये मुझे दो मासका समय लगा। इतने समयमें जो अनुभव मुझे प्राप्त

हुआ वह कुछ आश्चर्यकारक था। जो अन्न पचन होकर ठीक प्रकार शौच कभी कभी आठ दिनोंमें भी नहीं आता था, वह आसनोंके अभ्यास शुरू करनेके पश्चात् दो दिनोंमें साफ होकर आने लगा। तथा शौच साफ होना किसको कहते हैं और शौचशुद्धि होनेके पश्चात् शौचानंद कैसा होता है, इस बातका अनुभव आने लगा !! इन दिनों आसनोंके महत्त्वपर मेरा विश्वास दृढ हो गया।

नियमपूर्वक आसनोंका अभ्यास करनेपर भी प्रतिदिन शौच नहीं होता था। वह त्रुटि भी दूर हो गई, जबसे मैं कुंभक प्राणायाम करने लगा। एक दिन ऐसा हुआ कि, दैनिक आसनोंका अभ्यास करनेके पश्चात् मैं प्राणायाम करने लगा। कुंभक प्राणायामका अभ्यास करते ही शौच होनेका सभव प्रतीत हुआ। आसन खोलकर मैं शौच चला गया। वही पहिला दिन था कि जिस दिन मुझे खुला शौच होनेका आनद प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् नियमपूर्वक " आसन और प्राणायाम " का अभ्यास मैंने किया और अब भी अपने दैनिक अनुष्ठानमें मैं करता रहता हूं।

उक्त प्रकार " आसन और प्राणायाम " के नियमपूर्वक दृढ अभ्याससे अब मुझे प्रतिदिन शौच हो जाता है। अब मैं प्रतिदिन शौच हो जाता हु और किसी प्रकार भी कब्जकी शिकायत नहीं रही है। जबसे मैंने आसन और प्राणायामका अभ्यास प्रारंभ किया, तबसे मैंने किसी दवाका सेवन नहीं किया, क्योंकि औषधकी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं हुई।

शौच खुला और साफ आनेसे अब मैं जानता हू कि भूख किसे कहते हैं और भूख लगनेसे अन्नका स्वाद कैसा होता है। अब अन्नका पचन भी प्रायः ठीक प्रकार होता है, निद्रा भी पहिलेसे अच्छी आती है, चित्तकी अपूर्व प्रसन्नता रहती है, सिरदर्द और ज्वरका पता भी नहीं रहा है कि वे कहां भाग गये हैं! पहिले मेरा शरीर बडा ही कमजोर और मरियलसा रहता था, परन्तु अब वह शनैः शनैः अच्छा होने लगा है। देखनेवाले (विशेषतया जिन्होंने कि मुझे ३।४ वर्ष बाद देखा है) मेरे चेहरेपर अब सुर्खी आती हुई देखते हैं। नेत्रमें तेज आता हुआ अनुभव होता है, कार्य करनेका उत्साह प्रतिदिन बढ रहा है। मनकी

उल्लसित वृत्ति हो गई है। सब जगत् उत्साहसे परिपूर्ण है, ऐसा मुझे अब प्रतीत होने लगा है। मेरे सामने जो निराशाकी छाया सदा रहती थी, वह दूर हो गई है और मैं उत्साहके दिव्य प्रकाशमें आ गया हूं। !!

जो परिवर्तन विविध डाक्टरों, हकीमों और वैद्योंके औषध नहीं कर सके, वह इष्ट परिवर्तन योगसाधनके आसन और प्राणायामके अनुष्ठानसे मेरे शरीरमें हो गया और हो रहा है। अब मेरी मस्तिष्क आदिकी शक्ति बडे उत्साहके साथ कार्य करनेमें समर्थ हो गई है। शरीरके सब अवयव भी कार्यक्षम बने हैं और मुझे पूर्ण रीतिसे अनुभव हुआ है कि योगसाधनसे सब प्रकारकी निर्दोषता और निरोगता प्राप्त हो सकती है।

अब करीब तीन वर्ष हुए हैं कि जबसे मेरा स्वास्थ्य औषधिसेवनके बिना ही अति उत्तम रहा है। मेरी अवस्थाकी अपेक्षासे जिनकी अवस्था अच्छी होगी, उनको तो थोडे ही समयमें लाभ हो सकता है और बडा आश्चर्यकारक लाभ हो सकता है। तथा जो प्रारंभसे ही नीरोग होंगे, उनका आरोग्य आसन प्राणायामके अभ्याससे चिरस्थायी हो सकता है। अर्थात् जैसा रोगीको आसन प्राणायामसे लाभ हो सकता है, वैसाही नीरोग भी लाभ प्राप्त कर सकता है।

ऋषि-मुनियोंने यह योगसाधनका मार्ग हमारे लिये सुगम कर रखा है। इसमें किसी प्रकारका धोखा नहीं है, किसी प्रकारका भय नहीं है। इस मार्गमें थोडासा भी प्रयत्न किया जायगा तोभी बडा लाभ हो सकता है। इस मार्गपर चलनेसे आत्मशक्तियोंका विकास हो सकता है। यदि लोग योगाभ्यास करने लगेंगे, तो औषधादि विषोंके सेवन करनेमें जो उनके सहस्रों रुपयोंका व्यय हो रहा है, निःसंदेह बच जायगा और सच्चा स्वास्थ्य प्राप्त होगा।

आसन और प्राणायामके अभ्याससे मेरे शरीरपर और विशेषतः कोष्ठबद्धता विषयक जो लाभ मुझे हुआ है, वह ऊपर दिया है। अभ्याससे जो अन्य सुपरिणाम हो रहे हैं, वे आगे होनेवाले हैं, उन्हें भी ठीक समयपर पाठकोंके लिये प्रकाशित करनेमें मैं संकोच नहीं करूंगा, किन्तु अनुभव पूरा होनेके पश्चात् ही। साम्प्रत मुझे अंदर एक बडी अपूर्णताका ज्ञान प्राप्त हुआ है, यद्यपि

डाक्टरी दृष्टिसे अब मुझे कोई रोगादिक नहीं है। आजकल मैं इसीके ठीक करनेमें श्रम कर रहा हूं। इसी त्रुटिके कारण जो अन्य बहुतसे स्वास्थ्यके चिह्न मुझमें प्रकट रूपमें आ जाने चाहिये थे, अभीतक प्रकट नहीं हैं और इसीसे मैं अभी अपना अनुभव प्रकाशित करनेकी इच्छा नहीं करता था, तो भी जितना बिलकुल स्पष्ट है उतना लिख दिया है। परमात्माने निश्चयसे योगसाधनके आश्चर्य प्रकट करनेके प्रयोजनसे ही मुझे ऐसा त्रुटिपूर्ण शरीर देकर साथही योगसाधनकी इच्छा भी मुझमें पैदा कर रखी है।

१२. ब्रह्मचर्यका वायु-मंडल

(१) मतकी धुन

कोई बात बनानी हो, तो वह तब बनती है कि जब उस बातका वायुमंडल तैयार होता है और उसी वायुमंडलमें वह मनुष्य अपने आपको रंग देता है। विशिष्ट राजनैतिक विचारोंका जब देशमें वायुमंडल बन जाता है, तभी उस देशके वचनोंमें उक्त विचार फैलकर विशिष्ट प्रकारकी क्रांति हो जाती है। धार्मिक विचारोंका परिवर्तन भी इसी प्रकार हो जाता है। यही नियम धार्मिक विचारोंके लिये भी है।

इस समयतक जो जो बड़े धर्मप्रवर्तक हुए, तथा मतमतान्तरोंके संचालक बने, राष्ट्रीय आंदोलनोंके पुरस्कर्ता हो गये, अथवा अन्य बातोंका प्रचार करनेवाले बने, उन सबोंने अपना अपना विशिष्ट प्रकारका ही वायु-मंडल बनाया था और अपने आपको उसीमें रखकर उन्होंने उसी वायुमंडलसे अपने मतका प्रचार किया। जो धर्मक्रांति करनेवाला अथवा अपने विचारोंका प्रचार करनेवाला अपना वायुमंडल नहीं बना सकता और अपने आपको तथा जनताको उसी वायुमंडलमें नहीं रंग सकता, उसका मत प्रचलित भी नहीं हो सकता। इसका हेतु स्पष्ट ही है। पहाडोंपर भ्रमण करनेवाले कहते हैं कि कई पहाड ऐसे हैं कि जहां भ्रमण करनेसे सिरमें चक्कर आ जाते हैं। दूसरे कई

ऐसे पहाड हैं कि जहाँ घूमनेसे चित्त प्रसन्न होता है और कई ऐसे पहाड हैं कि वहाँ केवल रहने मात्रसे बडी भूख लगती है। परंतु कई ऐसे भी पर्वत हैं कि जहाँ दस दस मीलोंका चक्कर लगाने पर भी भूख नहीं लगती। पाठक पूछेंगे कि 'इसका क्या कारण है?' उक्त सब प्रकारके पहाडोंकी विभिन्न परिस्थितिका कारण एक ही उत्तरसे विदित हो सकता है। वह यह है कि "उस पहाडका वायुमंडल ही वैसा है।" तात्पर्य, जिस प्रकारके वायुमंडलमें मनुष्य रहता है, उसी प्रकारका वह बन जाता है।

धार्मिक संस्थाओंका भी यही हाल है। प्रत्येक संघके प्रवर्तक, संचालक और उपदेशक जिस प्रकारका वायुमंडल जनतामें बनाते हैं, उस प्रकारके सभासद उस संस्थाके बनते हैं। किसी समय ऐसा भी होता है कि धर्म-संस्थापकके मतके विरुद्ध ही मत उस सप्रदायमें प्रचलित होता है, इसका कारण संस्थापकके चले जानेके पश्चात् जिन लोगोंके हाथोंमें वह संस्था आ जाती है, उनके स्वभावोंके अनुकूल उस संस्थामें वायु-परिवर्तन हो जाता है। यही कारण है कि अहिंसा-प्रचारक बुद्धधर्ममें सबसे अधिक मांसभक्षक लोग हैं, शांतिके प्रचारक क्रिश्ची धर्ममें जो राष्ट्र हैं वेही जगत्‌में अधिक अशांति फैला रहे हैं, अछूतोद्धारक रामानुज-मतमें सबसे अधिक छूतछात नियमान है; तथा वैदिक धर्मका अभिमान रखनेवालोंमें तथा उसका प्रचार करनेवालोंमें भी वेदकी पढाई शून्यप्राय ही है! तात्पर्य, केवल धर्मपर विश्वास रखने अथवा मतका स्वीकार करने मात्रसे ही कार्य नहीं हो सकता; परंतु उस धर्मका वायुमंडल बनना चाहिये, उस मतका बना हुआ वायुमंडल शुद्ध रहना चाहिये अर्थात् उसमें प्रचारकोंके दोष नहीं मिलने चाहिये, तथा उसी वायुमंडलका परिपोष करनेका यत्न होना चाहिये, तभी कार्य हो सकता है। जो नियम सर्वसाधारणके लिये है, वही ब्रह्मचर्यके लिये भी है।

वैदिक धर्मका विशेष अंग ब्रह्मचर्यही है। वैदिक धर्ममें जितना बल ब्रह्मचर्यके लिये दिया है, उतना किसी प्रकार अन्य धर्ममें नहीं दिया। तथापि अन्य मतावलंबियोंकी अपेक्षा वैदिक धर्ममें रहनेवाले स्त्रीपुरुषोंमें ब्रह्मचर्य अधिक पाला जाता है, यह बात नहीं है। ब्रह्मचर्यके अभावके कारण वैदिक धर्मका

अभिमान रखनेवालोंके अंदर कई कमजोरियां उत्पन्न हो गई है। इसका कारण इतना ही है कि इसमें ब्रह्मचर्यका वायुमंडल नहीं रहा, जो प्रारंभमें आविष्टरूपमें था।

इस समय भी ब्रह्मचर्यका पालन करनेके लिये कई स्थानोंमें प्रयत्न हो रहे हैं। सब प्रयत्न निःसंदेह प्रशंसाके योग्य हैं, परंतु आन्तरिक अवस्था देखनेसे पता लग जाता है कि कई स्थानोंमें जैसा ब्रह्मचर्यका वायुमंडल बनना चाहिये था, वैसा अबतक नहीं बना। नामों, स्थानों और मकानोंसे ही केवल वायुमंडल नहीं बन सकता, संस्थाके सभी संचालकोंके अंदर उसी ब्रह्मचर्यकी " धुन " चाहिये। संचालकोंकी ऐसी अवस्था होनी चाहिये कि उनको सर्वत्र वही ब्रह्मचर्यका भाव दिखाई देना चाहिये।

जिसको बहुत भूख लगती है, उसको अन्नके स्वप्न आते हैं। जो राष्ट्रीय स्वातंत्र्य चाहता है, उसको राष्ट्रीय स्वतंत्रताके भाव सर्वत्र दिखाई देते हैं, तथा जिसको ब्रह्मचर्यका प्रचार करना है, उसको सर्वत्र ब्रह्मचर्यही ब्रह्मचर्य दिखाई देना चाहिये, तब जाकर वायुमंडल बन सकता है। इस प्रकारके " ब्रह्मचर्यकी धुन " चढे हुए संचालकही जिस संस्थामें एक विचारसे कार्य करेंगे, उस संस्थाका वायुमंडल ब्रह्मचर्यमें परिपूर्ण हो जायगा और ऐसेही संस्थासे " ब्रह्म-चारी " निकल सकेंगे।

वेद पढनेसे पता लग जाता है कि इस प्रकारकी " ब्रह्मचर्यकी धुन " जनतामें उत्पन्न होना वेदको अभीष्ट है। अथर्ववेदके ब्रह्मचर्य-सूक्तमें इस ब्रह्मचर्यकी धुनका अच्छा वर्णन है। जिसको जो धुन होगी, उसको वही विषय सर्वत्र दिखाई देगा, अर्थात् जिसको ब्रह्मचर्यकी धुन होगी, उसको संपूर्ण जगत्में ब्रह्मचर्यकी ही विभूति दिखाई देगी। वह कहेगा कि " देखो, यह मेघ ब्रह्मचारी है, ये वृक्ष भी ब्रह्मचारी हैं और सचमुच ये पशुपक्षी भी ब्रह्मचर्यका पालन कर रहे हैं, अहा हा! पृथ्वीसे लेकर आकाश तक सभी पदार्थोंमें मुझे ब्रह्मचर्यका भाव दिखाई दे रहा है। सब पदार्थ यदि ब्रह्मचर्यका धारण करके अपनी सत्ताको स्थिर कर रहे हैं, तो मैं भी ब्रह्मचर्यसे वंचित क्यों रहूं? मैं भी अवश्य ही ब्रह्मचर्यका पालन करके अपना अभ्युदय करूंगा! " जिसके मनमें

ब्रह्मचर्य की धुन इस प्रकार चढेगी, वही ब्रह्मचारी बन सकता है। इसलिये उस " वैदिक धुन " का थोडासा वर्णन यहां करता हूं-

> ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ॥
> संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥
>
> (अथर्व० ११।५।२०)

" औषधियाँ, वनस्पतियाँ, संवत्सर, अहोरात्र और (भूतभव्यं) भूत, वर्तमान तथा भविष्य काल ये सब पदार्थ ब्रह्मचारी बने हैं, क्योंकि वे (ऋतुभिः सह) ऋतुओंके साथ रहते हैं। "

(२) संवत्सरका ब्रह्मचर्य।

प्रजापतिका ब्रह्मचर्य

वर्षका नाम संवत्सर है और संवत्सरका नाम प्रजापति है। शतपथब्राह्मणमें कहा है कि—

> द्वादश वै मासाः संवत्सरस्य, पञ्चर्तव,
> एष एव प्रजापतिः सप्तदशः, सर्वं वै प्रजापतिः ॥
>
> (श० ब्रा० १।३।२।१०)

" संवत्सरके बारह मास और पांच ऋतु मिलकर प्रजापति होता है। " संवत्सरका नाम प्रजापति होनेमें क्या हेतु है ? इसका विचार करना चाहिये। वेदके नाम निरर्थक नहीं होते, कोई न कोई विशेष गूढ बात उसमें अवश्य हुआ करती है। इसका पता पाठकोंको यहाँ लग सकता है। " प्रजा-पति " शब्द प्रजापालनका धर्म बता रहा है। जो अपनी प्रजाओंका यथायोग्य रीतिसे पालन करता है, वह प्रजापति होता है। प्रजाका अर्थ " संतान " समझनेसे प्रजापति शब्द गृहस्थीका भाव बता सकता है, तथा " जनता " अर्थ लेनेसे उसीका अर्थ राजा होता है। दोनों स्थानोंमें तात्पर्य एक ही है। वेही मातापिता ' प्रजा पति ' कहनेके योग्य बनेंगे कि जो अपने संतानोंका परिपालन, ऋतुओंके परिवर्तनके अनुसार अन्नादि देकर करते हैं और इस प्रकार संतानों-

की पुष्टि करनेमें तत्पर होते हैं। इस प्रकार वही राजा प्रजा-पति कहलाने योग्य होगा कि जो अपनी प्रजाका परिपालन ऋतुओंके अनुसार धान्यादिकी वृद्धि कराके करता है। संवत्सर अर्थात् वर्ष भी ऋतुओंके अनुसार फल फूल आदि देकर सब प्राणिमात्रका संरक्षण करता है, इस कारण संवत्सर प्रजापति है और यह ऋतुओंके अनुकूल व्यवहार करता है।

"ऋतुके अनुसार व्यवहार करनेका धर्म" जैसा एक गृहस्थीमें है, वैसाही संवत्सरमें भी है। अथवा यों कहिये कि जैसा "ऋतु-गामी" होनेका धर्म संवत्सरमें है, वैसाही गृहस्थीमें भी "ऋतु-गामी" होनेका धर्म अवश्य होना चाहिये।

संवत्सर भी ऋतुओंके साथ साथ चलता है। वसंत ऋतुमें वनविहार करता है, ग्रीष्म ऋतुमें तपस्या करता है, वर्षाऋतुमें वीर्य (जल) प्रदान करता है, इसी प्रकार अन्य ऋतुओंके अनुकूल व्यवहार करता है। प्रत्येक वर्षके तप करनेके और वीर्य प्रदान करनेके, तथा फलने फूलनेके ऋतु निश्चित होते हैं। जिस ऋतुमें जो करना योग्य होता है, उस ऋतुमें वही करता है। इस प्रकार संवत्सर ऋतुगामी होनेके कारण ऋतुओंके सब व्यवहार करता हुआ भी, ब्रह्मचारी ही है। अर्थात् इसका व्यवहार देखनेसे यह शिक्षा मिलती है कि जो "ऋतु-गामी" होगा, वह गृहस्थाश्रममें रहता हुआ भी ब्रह्मचारी हो सकता है। वर्षमें संवत्सरका एकही वर्षाऋतु है कि जिसमें वह सारी भूमिको वीर्य (रेत=जल) प्रदान करता है, अन्य ऋतुओंमें वह यतीही रहता है, इसी प्रकार गृहस्थोंको वर्षमें एकही ऋतुमें गमन करना योग्य है और अन्य ऋतु तप और व्रतके लिये रखने उचित है। संवत्सर जैसा ऋतुगामी है, वैसा जो होगा वह ब्रह्मचारी रह सकता है।

प्रिय पाठको! देखिये, किस दिव्य दृष्टिसे वेदने संवत्सर अर्थात् वर्षके ऋतुओंके साथ होनेसे किस प्रकार ब्रह्मचर्यका उपदेश दिया है। जिसको ब्रह्मचर्यकी धुन होगी, वह इसी प्रकार सर्वत्र ब्रह्मचर्य ही देखेगा। जो पाठक इस रीतिसे परिचित होकर सर्वत्र ब्रह्मचर्य देखने लगेंगे, वे निःसंदेह ब्रह्मचारी बन सकेंगे।

(३) वृक्षोंका ब्रह्मचर्य

पूर्वोक्त मंत्रमें ही कहा है कि, " औषधि, वनस्पतियाँ अर्थात् वृक्षादिक भी ब्रह्मचारी ही बने हैं। " वेद इस मत्र द्वारा और एक दृष्टि दे रहा है। देखिये, वेद किस रीतिसे बोध देता है।

वृक्ष ब्रह्मचारी हैं और औषधियाँ तथा वनस्पतियाँ ब्रह्मचारिणी हैं, अर्थात् जन्मसे ही इनका ब्रह्मचर्य है। अब इस ब्रह्मचर्यकी कल्पना देखिये। इनके साथ भी ऋतुगामित्वका सबंध ही है। अपने ऋतुमें ही ये आगमन करते हैं। मंत्रमें " औषधि और वनस्पति " ये दो ही शब्द हैं, वृक्ष शब्द हमने यहां रखा है। औषधिवनस्पतियोंका विशिष्ट ऋतुमें ही होना, खास ऋतुमें उनका "पुष्पवती" होना और निश्चयपूर्वक विशेष ऋतुमें फलवती होना सुप्रसिद्ध ही है। स्त्रियोंके विषयमें " ऋतुमती " होनेके लिये " स्त्री पुष्पवती हो गई है " ऐसा भी कहते हैं। स्त्री भी एक लता अथवा वल्ली है, वह ऋतुकालमें " पुष्पवती " होती है और पुष्पवती होनेके पश्चात् फलवती अर्थात् पुत्रवती होती है। फल-धारणा, गर्भधारणा, पुत्रयुक्त होना आदिका सबंध पुष्पवती होनेसे कितना है, इस बातका यहां पता लग सकता है। इसीलिये ऋतुकालमें ही केवल गमन होना चाहिये, अन्य समय नहीं। ऋतुकालमें पुष्पवती होनेका धर्म वनस्पतियोंमें है, वही स्त्रियोंका धर्म है। जो स्त्रियां इस प्रकार ऋतुगामी होती हैं, वे स्त्रियां ब्रह्मचारिणी हैं।

जो बात वनस्पतियों और औषधियोंमें है, वही बात वृक्षोंमें भी है। इसी कारण वृक्ष पदका वहाँ अध्याहार किया था। वृक्ष भी ऋतुके अनुसार ही कार्य करके फलवान् और पुत्रवान् बनते हैं। वृक्ष वनस्पति आदियोंके फूलोंमें स्त्रीकेसर और पुंकेसर होते हैं और वहां स्त्रीपुरुष संबंधसेही फलकी उत्पत्ति होती है। इनका परस्पर-संबंध योग्य ऋतुकालमें होनेके कारण फलका प्रादुर्भाव भी योग्य रीतिसे होता है। इस प्रकार ये सब वृक्ष ऋतुगामी होनेका उपदेश अपने प्रत्यक्ष व्यवहारसे मनुष्योंको दे रहे हैं। अर्थात् ऋतुगामी होनेसे इनका ब्रह्मचर्य है।

इनके ब्रह्मचारी होनेका हेतु और भी एक है। वह यह है कि ये सब ' ऊर्ध्व

रेता " हैं। वृक्षादिक भूमिसे जल और रसका शोषण करते हैं, जड़ोंसे रसोंका शोषण करनेका इनका निज धर्म ही है। नीचेका जल और रस ऊपर खींचकर वृक्षके सबसे ऊपरके पत्तेतक पहुंचाया जाता है। इस कारण ये ऊर्ध्व-रेता हैं। 'रेतस्' शब्दके अर्थ वेदमें " जल, रस, द्रव पदार्थ और वीर्य " इतने हैं। ये सब वृक्षादिक सब मनुष्योंको ऊर्ध्वरेता बननेकी विधिका उपदेश प्रत्यक्ष अपने आचरणसे दे रहे हैं। वेद कहता है कि " हे मनुष्य ! तू वृक्षोंको देखकर उनसे ऊर्ध्व-रेता बननेकी विधि सीख। "

ऊर्ध्वरेता बननेकी विधि उक्त प्रकारही है। मनकी शक्तिद्वारा गुदासमेत शिस्न तथा नाभिस्थानके नीचेकी सब नसनाडियोंको ऊपर खींचना चाहिये। इस प्रकार ऊपर खींचनेसे वहांके वीर्यकी गति ऊपर हो जाती है और वीर्य ऊपर होकर पृष्ठवंशके द्वारा मस्तिष्कमें पहुंचता है। जिस प्रकार जमीनका रस वृक्षकी जडोंद्वारा ऊपर खींचा जाता है और वह सबसे ऊपरके पत्तोंतक पहुंचता है, उसी प्रकार मूल स्थानका वीर्य पृष्ठवंशद्वारा मस्तकमें पहुचता है। यही ऊर्ध्वरेता होना है और इसकी रीति साधारणरूपसे यही है। [इसका विस्तारपूर्वक वर्णन " ब्रह्म-चर्य " नामक पुस्तकमें लिखा है, वहीं पाठक विशेष रीतिसे देखें।]

यही कारण है कि जिससे मेघ भी ब्रह्मचारी सिद्ध होता है। देखिये—

(४) मेघका ब्रह्मचर्य

अभि क्रंदन् स्तनयन्नरुणः शितिंगो बृहच्छेपो-
ऽनु भूमौ जभार ॥ ब्रह्मचारी सिंचति सानौ
रेतः पृथिव्यां तेन जीवंति प्रदिशश्चतस्रः ॥

(अ० ११।५।१२)

" (अभि क्रंदन् स्तनयन्) बडी गर्जना करनेवाला (अरुणः शितिंगः) भूरे और काले रंगवाला मेघ (बृहच्छेपः) बडे वीर्यको पृथिवीमें भर देता है। वह (ब्रह्म-चारी) जलधारी मेघ (सानौ) पहाडोंपर तथा पृथिवीपर (रेतः सिंचति) जलरूप वीर्यका सिंचन करता है, जिससे चारों दिशाएं जीवित रहती हैं। "

ब्रह्मचर्यसूक्तमें यह मंत्र १२ वा है। यह मेघकाही वर्णन है। मंत्रमें "ब्रह्म-चारी" शब्द मेघवाचकही है। यहाँ "ब्रह्म" शब्दका अर्थ जल है। जलको साथ लेकर सर्वत्र संचार करता है, इसलिये जलसंचारी मेघका नाम "ब्रह्म-चारी" है। मेघ "ऊर्ध्वरेता" भी है। "रेतस्" शब्द जलवाचक है। ऊर्ध्व अर्थात् ऊपर जिसने [रेतः] उदक धारण किया है, वह ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी यहां मेघही है, यह पहाडोंकी चोटियोंपर तथा भूमिपर भी अपने वीर्यरूप जलका सिंचन करता है। इस जलसिंचनसे चारों दिशाओंके प्राणी तथा वृक्षादिक जीवित रहते हैं। भूमिपर जलका स्थान है, इस निम्न स्थानसे जलरूप वीर्यका आक-र्षण करके उसको ऊपरही धारण करनेका कार्य मेघ करता है। यही मेघका ब्रह्मचर्य है। उक्त मंत्रके शब्दार्थ दोनों पक्षोंमें कैसे होते हैं, देखिये—

मेघ	ब्रह्मचारी
(१) गर्जना करना।	(१) बडी आवाजसे उपदेश देना।
(२) भूरे और काले रंगसे युक्त होना।	(२) गहमी अथवा निमगोरा तेजस्वी वर्ण धारण करना।
(३) बहुत जल धारण करना।	(३) बहुत वीर्य धारण करना।
(४) जलका ऊपर आकर्षण करना।	(४) वीर्यको ऊपर ले जाना, ऊर्ध्वरेता बनना।
(५) प्राणिमात्रको जीवनरूप जल देना।	(५) सबको नव-जीवनरूप चेतना देना।

ब्रह्मचारीमें और मेघमें उक्त गुणोंकी समानता है। पाठक इसका अधिक विचार करें। इस प्रकार गुणोंकी समता देखनेसे वेदकी दृष्टि प्राप्त हो सकती है। वेदमें जो कठिनता है वह शब्दार्थकी कठिनता नहीं है, परन्तु वैदिक दृष्टिसे वेदका आशय जाननेकी ही कठिनता है। इसी कारण पाठकोंको उचित है कि वे जहा जहा वैदिक रीतिकी विशेषता दिखाई देगी, वहां वहां विशेष गंभीर भावके साथ सोच विचार करके उस भावको अपनानेका यत्न करें। ऐसा करनेसे कुछ समयके पश्चात् वैदिक दृष्टि स्वयं उनके अंदर विकसित हो सकती है। अस्तु।

यहां मेघके ब्रह्मचर्यका वर्णन हुआ। मेघ ब्रह्मचारी है और ऊर्ध्वरेता भी है। अपने वर्षाऋतुमें ही अपना वीर्यरूप जल भूमिपर छोड देता है, इस कारण ऋतुके अनुरूप कार्य करनेके कारण यह मेघ "ऋतु-गामी" भी है। इस प्रकार मेघमें ब्रह्मचारी, ऊर्ध्वरेता, ऋतुगामी आदि शब्द सार्थ हुए, ये शब्द ब्रह्मचारी में सार्थ होतेही हैं। समयपर मेघ तप करता भी है, विशेषतः वृष्टिके पूर्व मेघका तप होता है। जब मेघ आते हैं और वृष्टि नहीं होती, उस समय बडी ही उष्णता होती है, जिससे सारे संसारको कष्ट होते हैं। इतना इसके तपका बडा भारी प्रभाव होता है। इस रीतिसे वृष्टिके पूर्व तपका समय होता है। वृष्टि वीर्यप्रदानकी सूचना देती है और वीर्यप्रदान गृहस्थीका धर्म है, इसलिये गृहस्थी बननेके पूर्व ब्रह्मचर्यका तप करना आवश्यक होता है। इस प्रकार विचारकी दृष्टिसे सूक्ष्मसे सूक्ष्म बातोंके गुणसाम्यका विचार करना चाहिये।

(५) सूर्यका ब्रह्मचर्य।

उक्त दृष्टिसे सूर्य भी ऊर्ध्व-रेता है, क्योंकि यह रेतः अर्थात् जलको ऊपर खींचता है। सूर्यके किरणोंसे जल ऊपर खींचा जाता है और उससे मेघ बनते हैं, यह बात वैदिक वाङ्मयमें सुप्रसिद्ध ही है। किरणोंको वेदमें नाडियां भी कहा है। अर्थात् सूर्य अपनी नाडियोंसे जलको ऊपर खींचता है। ब्रह्मचारी भी वीर्यको अपनी नसनाडियोंसे ही ऊपर खींचता है। यह गुणसाम्य सूर्यमें और ब्रह्मचारीमें है। इसी कारणविशेषसे श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले ब्रह्मचारी को "आदित्य ब्रह्मचारी" कहते हैं। अस्तु। इसी प्रकार वायु आदिकोंका ब्रह्मचर्य ज्ञात हो सकता है। अब और देखिये—

(६) पशुपक्षियोंका ब्रह्मचर्य।

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः।

(अ० ११।५।२१)

"(पार्थिवाः पशवः) पृथिवीपर जो पशु हैं, जो अरण्य और ग्राममें होते हैं,

तथा जिनको (अ–पक्षाः) पंख नहीं होते हैं, वे सब तथा (दिव्याः) आकाशमें संचार करनेवाले जो पक्षी हैं, वे सब ब्रह्मचारी ही बने है। ”

इस मन्त्रमें पशुपक्षियोंके ब्रह्मचर्यका वर्णन किया है। प्रायः सभी पशुपक्षी जन्मसे ब्रह्मचारी हैं, यह मंत्रका तात्पर्य है। सिंह, व्याघ्र आदि पशु एकपत्नीव्रतका उत्तम रीतिसे परिपालन करते हैं। कई पक्षी ऐसे हैं कि जो एकपत्नीव्रतसे रहते हैं, और पत्नी मर जानेके पश्चात् पूर्ण ब्रह्मचर्यसे रहते हैं!! अन्य पशु पक्षी यद्यपि एकपत्नीव्रतसे नहीं रहते, तथापि ऋतुगामी अवश्य होते हैं। अ–मोघ वीर्य होनेकी सिद्धि उनको प्रायः होती है! अमोघ–वीर्यका तात्पर्य वीर्य व्यर्थ न जाना है। प्रायः सभी पशुपक्षियों में यह सिद्धि होती है। तात्पर्य, जो सिद्धि प्राप्त करनेके लिये मनुष्योंको योगादि साधनोंका आश्रय करना पडता है, वह सिद्धि पशुपक्षियोंको जन्मतः है। इसका कारण ढूंढना चाहिये। इसका कारण यह है कि उनमें मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक ब्रह्मचर्य है। मनुष्योंकी अपेक्षा उनमें स्त्री–पुरुष–संबंध बहुधा कम है। ब्रह्मचर्यके अभावके कारणही मनुष्योंको अधिक कष्ट भोगने पडते हैं तथा ब्रह्मचर्यके कारणही पशुओंमें आरोग्य आदि अधिक है।

पशुओंका यह ब्रह्मचर्यका भाव देखकर मनुष्य बहुतकुछ बोध ले सकते हैं। जो तपके मार्गमें प्रवृत्त होता है, वह शीत उष्ण सहन करता है, कंद मूल फल खाता है, थोडे कपडे पहनता है, वृक्षके नीचे बैठता है, स्त्रीसंबंध कम करा देता है, इत्यादि बहुतसे व्यवहार पशुओंमें सहज वृत्तिसे हैं। पशुभी सर्दी गर्मी सहन करते हैं, पत्ते और घास खाते हैं, खुले शरीरसे रहते हैं, कपडे नहीं पहनते, स्त्रीपुरुष संबंध कम करते हैं। यह साम्य है पशुमें और ब्रह्मचारीमें। यहां पाठक पूछेंगे कि ' क्या वैदिक धर्म और योगमार्ग मनुष्योंको पशु बनाना चाहते हैं? उत्तरमें कहा जा सकता है कि नहीं। परंतु वैदिक धर्म यह बताता है कि, पशु आदियोंमें जो श्रेष्ठता है, जो अच्छे गुणधर्म हैं, उनको अपनेमें धारण करो, तथा हीनसेभी अच्छे उपदेश लो। इस घमंडमें न रहो कि मनुष्य-योनि पशु-पक्षियों और वृक्षवनस्पतियोंसे श्रेष्ठ है, परंतु उन नीचली

योनियोंमें भी कितने दिव्य गुणधर्म हैं इसका विचार करो और उन शुभ गुणोंको अपने अंदर धारण करो। यह जन्मकी श्रेष्ठता क्या काम की है, जबतक सद्गुणोंकी श्रेष्ठता न होगी? हरएकको चाहिये कि वह अपनेमें शुभ गुणकर्मोंका विकास करनेका यत्न करे और अपने दोषोंको दूर करे।

जहां जो जो शुभ गुण होंगे उनको वहां देखना और उनको अपने अंदर बढाना, यह वैदिक धर्मकी शिक्षा है। परंतु आजकल ऐसी प्रणाली चली है कि जिससे शुभ गुण देखने और लेनेका भावही दूर हो गया है और सर्वसाधारण तथा खंडनकीही प्रवृत्ति बढ गई है। इस केवल खंडनकी प्रवृत्तिसे अन्योंके दुर्गुण देखनेका भाव ही बढता जाता है। जैसे ईसाई धर्मका प्रचार करनेवाले पादरी लोग दूसरे धर्मोंके सत्यतत्त्वोंको भी देखने और स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं होते, परंतु अपने धर्मप्रचारके मदसे दूसरोंके सत्यतत्त्वोंको भी परिवर्तित करके खंडनही करते रहते हैं। यदि हम वैदिकधर्मी लोग उन पादरियोंकी रीतिमें सुधारणा न करते हुए उनके समानही बनेंगे तो हमारी श्रेष्ठता कहां रही? हम भी तो वैसे ही बन गये! खंडनके लिये भी उनका अनुकरण करना हमको उचित नहीं है। उनकी रीति अत्यंत तिरस्करणीय है। सत्य धर्मके प्रचारके लिये उनका अनुकरण करना ठीक नहीं है। उनकी रीतिमें बडा दोप यह है कि, शुभ गुण देखनेकी भावनाही छूट जाती है और सर्वत्र दोष देखनेका दुष्ट स्वभाव बन जाता है। जो धर्मप्रचारक तार्किक रीतिसे खंडन करनेमें कुशल समझे जाते हैं, उनके मस्तिष्ककी अवस्था ऐसी विकृत बन जाती है कि, उनको अपने मतसे भिन्न किसी मतमें भी सत्यके अंशकी सत्ता दीखती ही नहीं। पर दोषकी राईका पहाड बनाने और स्वकीय दोषके पर्वतको न देखनेकी प्रवृत्ति सत्यधर्मकी दृष्टिसे अत्यंत घातक है। जहां यह बात होगी वहां सत्य धर्म रह नहीं सकता, क्योंकि "आत्मसंशोधन ही सत्यधर्मका मूल आधार है," और आत्मसंशोधनके लिये स्वकीय दोषोंको दोष समझकर दूर करना और परकीय गुणोंकी ओर प्रेमदृष्टिसे देखकर उनको भी पास करना, तात्पर्य अपनेमें शुभ गुणोंका संवर्धन करना, आवश्यक है। पाठक यहां देख

सकते हैं कि मूल वैदिक धर्मसे हम कितने गिर गये हैं।

वैदिक दृष्टिसे ब्रह्मचर्यका शुभ गुण पशुपक्षियोंमें, वृक्षवनस्पतियोंमें, तथा सूर्यादिकोंमें भी विद्यमान है, यह बात हमने इस लेखमें देखी है। जिस प्रकार सृष्टिके इन पदार्थोंसे हम ब्रह्मचर्यकी शिक्षा ले सकते हैं, उसी प्रकार अन्य शुभ गुणोंको सृष्टिमें देखकर हम अपने अंदर बढा सकते हैं। यह सर्वसाधारण वैदिक रीति है। प्रस्तुत लेखमें ब्रह्मचर्यके वायुमंडलका विशेषतः विचार करना है। वेदकी दृष्टिसे ब्रह्मचर्यका वायुमंडल सर्वत्र कैसा देखा जा सकता है, इसका ज्ञान पाठकोंको इस लेखसे ही होगा। वैदिक कालका ब्रह्मचारी अपनेमें ब्रह्मचर्य धारण करनेका यत्न करता है और साथ साथ वृक्षवनस्पतियों, पशु-पक्षियों, सूर्यचंद्रादिकोंमें भी ब्रह्मचर्य होनेका अनुभव करता है। तात्पर्य उसको छोटे तिनकेसे लेकर महान् सूर्य तक सर्वत्र ब्रह्मचर्यही ब्रह्मचर्य दिखाई देता है। वह समझता है कि सृष्टिके संपूर्ण पदार्थ ब्रह्मचर्यका स्वयं पालन करके मुझे ब्रह्मचर्यके पालनका उपदेश कर रहे हैं। इस प्रकार ब्रह्मचर्यसे भरे हुए वायुमेंही निरंतर श्वासोच्छ्वास करनेके कारण उसकी भावनाही ब्रह्मचर्यके भावसे परिपूर्ण बन जाती है।।।

इसी सूक्तमें आगे जाकर कहा है कि "राष्ट्रमें अध्यापक वर्ग भी ब्रह्मचर्यमें युक्त होने चाहिये, तथा क्षत्रिय वर्ग भी ब्रह्मचारी भी होने चाहिये। राजा अपने शासन प्रबंधके द्वारा सब लोगोंसे ब्रह्मचर्यका पालन कराके सब राष्ट्र की रक्षा करता है।" जब किसी जातिमें और जनतामें इस प्रकार ब्रह्मचर्यकी धुन होगी तो वहां हरएक के ब्रह्मचर्य पालनमें कोई कठिनता नहीं होगी। आजकल ऐसा वायुमंडलही नहीं है, न किसी जातिमें इस प्रकार ब्रह्म-चर्यकी धुन है, इस कारण इस समय ब्रह्मचर्य पालन होनेमें बड़ी कठिनता हो रही है। सर्वत्र ब्रह्मचर्यके घातक भाव बढ रहे हैं; नाना प्रकारके दुष्ट दुर्व्यसन बढ रहे हैं। चाय, काफी, सिगरेट, मद्य आदि घातक पान सभ्य समाजोंमें चल पड़े हैं, भोगकी वृत्ति बढ रही है, त्यागका भाव न्यून हो रहा है। ईर्ष्याद्वेष बढ रहे हैं और संयम कम हो रहा है। संपूर्ण जगत्में शान्तिके विचार

कम होते जाते हैं और परस्परोंके विचार तथा दूसरोंको गिरानेके भाव फैल रहे हैं। यह आजकल की वस्तुस्थिति है। इसलिये धर्मके प्रचारकों को अधिक उत्साहसे कार्य करनेकी जरूरत है और सर्वत्र वैदिक दृष्टिका उदय कराके, न केवल ब्रह्मचर्यके वायुमंडलको ही बनाना चाहिये, प्रत्युत वैदिक धर्मके अन्य राष्ट्रोंको भी ऐसा फैलाना चाहिये कि, जिससे उनका भी वायुमंडल सर्वत्र दिखाई दे।

वैदिक धर्मके प्रेमियो ! यह कार्य आपका है। कई लोग आपको उत्साहित करेंगे और फुरसतके समयमें प्रचार करनेके कार्यमें आपको लगायेंगे। परंतु आप स्मरण रखिये कि वैदिक धर्मके प्रचारमें यदि किसीसे रुकावट होनी है तो इसीसे होगी। केवल व्याख्यानोंसे जिसका प्रचार होता है वह वैदिक धर्म नहीं है। वैदिक धर्म अपने आचरणमें लाइये, आपकी मूर्ति ही वैदिक धर्ममें परिपूर्ण कीजिये, वेदके मन्त्रोंकी सचाई योगादि साधनोंसे स्वयं देखिये, और आपके चारों ओर वैदिक धर्मका वायुमंडल बनाइये। फिर आपके हरएक श्वासो-च्छ्वाससे वैदिक धर्मका प्रचार होता जायगा। इस सबके लिये सबसे प्रथम आपको ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी अत्यंत आवश्यकता है। इस लेखमें बताई रीतिसे आप ब्रह्मचर्यके वायुमंडलमें रहिये और ब्रह्मचर्यसे अमर बननेके मार्ग का आचरण कीजिये।

---

१३. योगके मुख्य साधन

"प्राणायाम और प्रत्याहार"

(लेखक- श्री परशुराम हरि थत्ते नासिक)

"मनकी स्थिरता होनेसे प्राणकी स्थिरता होती है, प्राण और मनकी स्थिरता होनेसे वीर्यको स्थिर होता है, वीर्यकी स्थिरतासे देहमें बल बढता है और जीवन भी सुरक्षित होता है।" यह प्राचीन "आर्योंकी जीवन-विद्या" थी। यह सब होनेके लिये प्राणायामकी अत्यंत आवश्यकता है, इसलिये जीवन-

की सुरक्षितताके लिये प्राणायाम की आवश्यकता निःसंदेह सिद्ध हुई। आजकल अपमृत्युका प्रमाण बढ रहा है, इसके लिये जो हेतु है, वह उक्त रीतिके अनुसार हमारा आचरण नहीं हो रहा, यही केवल है। इसका विचार पाठक अवश्य करें और यथासंभव प्राणायामका अनुष्ठान करें।

मनुष्यका जीवित वीर्य (शुक्र) पर अवलंबित है। वह शुक्र मनके ऊपर है, इस लिये मनकी सुरक्षितताके साथ वीर्यकी सुरक्षितता करना अत्यंत आवश्यक है। "प्राणस्थैर्य, मनःस्थैर्य और शुक्रस्थैर्य" यह क्रम सदा ध्यानमें रखना चाहिये। इस प्रकार प्राणायाम का अत्यंत महत्त्व है। प्राणायामका अर्थ केवल श्वासकाही निरोध नहीं है, प्रत्युत जिस जीवनशक्तिके कारण फेफडोंको गति मिलती है, उस शक्तिका नियमन करना है। इस लिये जितना जितना प्राणका नियमन होता जायगा, उतना उतना शरीरके संपूर्ण स्नायुओंपर हमारा अधिकार जमता जायगा।

जीवात्माकी शक्ति देहपर आकर कार्य करने लगती है, उस समय देहाकाशसे प्राणकी उत्पत्ति होती है। यही प्राण श्वास और उच्छ्वास रूपमें हमें दिखाई देता है। इस प्राणका आयाम करना अर्थात् उसकी मर्यादाका विस्तार करना, प्राणायाम कहलाता है। प्राणायाम क्रियामें प्राण और अपानका संयोग होता है, और प्राणायामसे प्राण और अपानकी शक्ति बढती है; इसलिये याज्ञवल्क्यादिकोंने प्राणायामका लक्षण प्राणापानसंयोग ही किया है। (१) प्राय बाहरसे अंदर जाता है यह उसकी "आतरिक गति" है, (२) पश्चात् अंदरसे बाहर आता है, यह उसकी "बाह्यगति" है। यही क्रमशः श्वास और उच्छ्वास हैं। उच्छ्वासको प्रश्वास भी कहते हैं। इन दोनों गतियोंसे यह प्राण देहका संचालन कर रहा है। इस लिये प्राणनिरोधसे अपनी संचालक शक्तिकी स्वाधीनता होती है। यह हमारा प्राण विश्वव्यापक संचालक शक्तिका एक अंश है, इस भावनासे प्राणायामका अभ्यास होना उचित है।

प्राणायाममें तीन भाग होते हैं-पूरक, कुंभक, रेचक। नासिका द्वारा प्राणको अंदर लेनेका नाम पूरक है; उसको अंदर रखनेका नाम कुंभक; पश्चात् नाकके

द्वारा बाहर छोडनेका नाम रेचक होता है। कई विशेष प्राणायामोंमें पूरक और रेचक मुखके द्वारा भी होते हैं, परंतु सर्वसाधारण प्राणायामोंमें नासिकाका ही उपयोग करना योग्य है। पूर्वोक्त तीन मार्गोंसे जो प्राणायाम बनता है, उसके क्रमभेदसे कई प्रकारके प्राणायाम सिद्ध होते हैं- (१) पहला "केवल कुंभक" है। रेचक पूरक न करते हुए श्वासोच्छ्वास की गतिका निरोध करना केवल कुंभक कहलाता है। (२) दूसरा "मध्य कुंभक" है। पूरक करनेके पश्चात् यथाशक्ति कुंभक करके तदनन्तर रेचक करनेसे यह प्राणायाम सिद्ध होता है। (३) तीसरा "अन्त कुंभक" है। पूरक करनेके पश्चात् रेचक करना और नंतर बाहर ही प्राणको स्थिर करनेका नाम अन्त कुंभक होता है। इसीको बाह्य कुंभक कहते हैं। (४) चौथा "अकुंभक" है। इसमें केवल पूरक और रेचक ही होते हैं, कुंभक नहीं होता है।

इनमें "केवल कुंभक" सबसे श्रेष्ठ है। उसकी सहायताके लिये अन्य प्राणायाम हैं। दीर्घ कालपर्यंत केवल-कुंभक प्राणायाम सिद्ध होनेसे बडे लाभ होते हैं। स्थान और कालके भेदसे प्राणायाममें अनेक भेद होते हैं। कालका भेद यही है कि, पूरक कुंभक रेचक में समयकी न्यूनता अथवा अधिकता होना। स्थानका भेद यह है कि अपने शरीरके अभीष्ट अवयवमें प्राण ले जानेकी शक्ति प्राप्त करके वहां प्राणसे इष्ट कार्य करनेकी इच्छाशक्ति बढाना। इसको "दैशिक प्राणायाम" कहते हैं।

प्राणायामके अभ्याससे प्रकाशके आवरणका नाश होता है। अर्थात् मनका तेज फैलने लगता है, ध्यानधारण करनेकी योग्यता मनमें बढ जाती है। इस प्रकार प्राणकी शक्ति बढनेसे साथ साथ मनकी भी शक्ति बढ जाती है। तात्पर्य प्राणायामसे जिस प्रकार शारीरिक आरोग्य बढता है, इन्द्रियोंकी शक्ति विकसित होती है, उसी प्रकार मनका बल बृंहित हो जाता है।

प्राणायामका अभ्यास करनेके लिये शुद्ध स्थान निश्चित करना उचित है। वहां निम्न लिखित प्रकार आसन तैयार करके उसपर योग्य आसन लगाकर बैठना। नीचे कुशोंका घास अथवा दर्भका आसन हो, उसपर ऊनका आसन,

पश्चात् उसपर कृष्णाजिन रखकर उसपर सूती वस्त्रका कपडा रखा जावे । आसन बडा ऊंचा न हो और नीचा भी न हो । परंतु बैठनेके लिये नरम और सुख देनेवाला हो ।

उस सुखासनपर बैठकर जहांतक हो सके वहांतक मनको एकाग्र और शांत करके तथा इंद्रियोंकी गतिका निरोध करके किसी एक विषयमें सब चित्त अर्पण करना । पीठ और गर्दन समरेखामें सीधी रखकर नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि जमा देनी और अंतःकरण की शुद्धि करनेकी इच्छासे स्थिर बैठ जाना । इस समय ऐसी भावना करनी चाहिये कि मैं ब्रह्ममें लीन हो रहा हूं । अथवा ब्रह्मकी एक नौका है, उसमें मैं बैठा हूं और संसार-सागरके पार हो रहा हूं ।

पृष्ठवंशकी रीढमें दोनों ओर इडा और पिंगला ये दो प्रवाह हैं और उनके बीचमें सुषुम्ना नामक एक प्रवाह है । पृष्ठवंशके मूल स्थानमें गुदाके ऊपर मूलाधारचक्र है, वहा कुंडलिनी शक्ति रहती है । यही आधारशक्ति अर्थात् मूलशक्ति है । इडाकी देवता चंद्र, पिंगलाकी सूर्य और सुषम्नाकी शिव है । इस लिये क्रमशः उनको चंद्रनाडी, सूर्यनाडी और शिवनाडी कहते हैं। जैसा कुंडलिनी शक्तिका स्थान मूलाधारचक्र है, उसी प्रकार शिवका स्थान मस्तक सहस्रारचक्र है । इन दोनोंका संबंध प्राणायामसे होता है । यह शिवशक्तिका संयोग अपूर्व फल देनेवाला है ।

प्राणायाम ठीक प्रकार होनेके लिये तीन बंध करने आवश्यक हैं– मूलबंध, उड्डियानबंध और जालंधरबंध । (१) मूलबंध-पूरक करनेके समय करना चाहिये । गुदा और शिश्नके बीचमें जो चार अंगुलका स्थान है, उस स्थानमें एडीका दबाव रखकर गुदाका आकुंचन करके अपान वायुको ऊपर खींचनेसे मूलबंध सिद्ध होता है । इसमें अपानका प्राणसे संयोग होता है, मलमूत्र अल्प होता है और वीर्यका रक्षण होता है । इसलिये इसका योग्य अभ्यास करनेवाला पुरुष वृद्ध अवस्थामें भी तरुण दिखाई देता है। (२) उड्डियानबंध- यह बंध रेचकके समय करना होता है । संपूर्ण पेटको अंदर खींचना और उसको जहां तक हो सके वहां तक पीठकी ओर ले जानेसे यह बंध सिद्ध होता है । यह सुगम

है तथा बडा लाभदायी है। क्षुधा प्रदीप्त होनेसे यह मृत्युको दूर करनेवाला है। (३) जालंधरबंध-कंठको सिकोड कर हनुको कंठमूलमें हृदयके ऊपर लगानेसे यह बंध सिद्ध होता है। इसको कंठबंध भी कहते हैं। इसका छः मास तक योग्य रीतिसे अनुष्ठान करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है।

पूरकके समय मूलबंध करनेसे अपानकी ऊर्ध्वगति होती है, कुंभकके समय जलंधर बंध करनेसे प्राणकी निम्नगति होती है। इस प्रकार अपान और प्राणकी मध्यमें संयोग होकर उष्णता बढती है, जठराग्नि प्रदीप्त होता है। इस ऊष्णताके बढ जानेसे कुंडलिनीकी जागृति होती है। यह शक्ति जागृत होनेके पश्चात् सुषुम्ना नाडीके द्वारा ऊपर चढने लगती है और सहस्रारचक्रमें पहुंचकर शिवके साथ संयुक्त होती है। यही स्वानंदसाम्राज्य है। प्राणायामके दृढ अभ्यासमें इसकी सिद्धि होती है।

एक नासिकासे पूरक करनेपर दूसरी नासिकासे रेचक करना चाहिये। पश्चात् जिससे रेचक किया होगा, उसीसे पूरक करके पहलीसे रेचक करना योग्य है। इसी प्रकार दायीं और बाईं नासिकासे यथाक्रम श्वासोच्छ्वास करनेका अभ्यास बढानेसे शनैः शनैः योग्य प्राणायाम होने लगता है। पूरकको जितना समय लगता है, उससे चार गुणा कुंभक और दो गुणा रेचक करना चाहिये। अर्थात् छः निमेषमें पूरक हुआ होगा, तो चोवीस निमेष कुंभकके लिये और बारह निमेष रेचक के लिये समय लेना चाहिये। अपनी शक्तिके अनुसार ही यह समय न्यूनाधिक रखना चाहिये। शक्तिसे अधिक करनेसे बडी हानि है। इसमें यह सावधानी रखनी चाहिये कि पूरक, कुंभक तथा रेचकमें किसी समय धक्का न लगे, सरल गतिसे ही प्राणका आना और जाना होता रहे। शक्तिसे अधिक करनेसे धक्के उत्पन्न होते हैं। उनसे शक्तिकी क्षीणता होती है।

जिस प्रकार शुद्ध जलके स्नानसे शरीरका बाह्य भाग निर्मल होता है, उसी प्रकार योग्य प्राणायामसे अंदरकी निर्मलता होती है। पूर्वोक्त रीतिसे अपान और प्राणका संयोग करनेके अभ्यास से जठराग्नि प्रदीप्त होता है और अपचनका कोई दोष नहीं होता। अग्नि प्रदीप्त होता है, परंतु ध्यानमें रहे कि अधिक

प्रमाणमें भोजन करनेसे हानि ही होगी, इसलिये मिताहारसे ही योग सफल होता है, यह बात कभी भूलनी नहीं चाहिये। प्राणायामसे इंद्रियां निर्दोष होती हैं और अपना अपना कार्य करनेमें अधिक समर्थ होती हैं। शरीरमें जो भारीपन उत्पन्न होता है, वह प्राणायामके अभ्याससे दूर होता है। भारीपन बीमारीका लक्षण और हलकापन आरोग्यका लक्षण है। बैठकर कार्य करनेवालोंके पेट बडे होते हैं। पेट बडा होना मृत्युको पास बुलाना ही है। प्राणायामके अभ्याससे पेट ठीक हो जाता है, अतएव उत्तम आरोग्य प्राप्त होता है। इस प्रकार प्राणायामसे अनेक लाभ हैं।

अन्य संपूर्ण शक्तियोंमें प्राणकी शक्ति सबसे श्रेष्ठ है। जब यह प्राणशक्ति स्वाधीन होती, तब उसके स्वाधीन होनेसे अन्य शक्तियां इससे सहज प्राप्त हो सकती हैं। यह प्राणायामके पूर्णत्वकी कल्पना है। मुख्य शक्तिको स्वाधीन रखनेका यह यत्न होता है। इसलिये सावधानीसे अभ्यास होना चाहिये। क्योंकि अयोग्य रीतिसे प्राणके साथ बर्ताव करनेसे बडे कष्ट हो सकते हैं।

प्राणका निरोध करनेसे आपका मन आपके अधीन होगा। जिस प्रकार दूधमें जल मिला होता है, उसी प्रकार प्राण और मन एक दूसरेके साथ मिले हुए हैं। इसलिये प्राणकी स्वाधीनता होनेसे मन भी स्वाधीन होता है। मन स्वाधीन होनेसे इंद्रियोंसमेत शरीर स्वाधीन होता है और इंद्रियोंकी स्वैर प्रवृत्ति दूर हो जाती है। आपका मन जिस तत्त्वका बना है, उसी तत्त्वका सब लोगोंका मन बना है, इसलिये जब आपका मन स्वाधीन होता है, तब वही शक्ति बढनेसे अन्योंके मनोंको वश करनेकी और उसके द्वारा उनके शरीर वश करनेकी शक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकारकी शक्ति जिनको प्राप्त होती है, उनको बहुत लोग अनुकूल होते हैं और बडी इच्छाशक्तिके चमत्कार करते हैं। इस प्रकार अनुभव होनेसे मनकी अगाध शक्तिका पता लगता है, तथा मनकी अखंड उन्नतिका भी मार्ग विदित होता है। इस प्रकार प्राणायामके अभ्याससे अनेक लाभ होते हैं। अब क्रमप्राप्त प्रत्याहारका विचार करेंगे।

अपने अपने विषयोंसे इंद्रियोंको निवृत्त कर उनको चित्तमें स्थिर करनेका नाम

मन और सपूर्ण इंद्रियोंका निग्रह होना यह एक बडा भारी तप ही है। इस तपसे जो तपस्वी होता है, उसका तेज फैलने लगता है, दीनताका नाश होता है। "मैं दीन नहीं हू" यह अनुभव उसको इस समय हो जाता है। वास्तवमें आत्मा ही शक्तिका केंद्र है, वह दीन कैसे हो सकता है? परतु जो गुलामी उसमें इंद्रियोंकी दासताके कारण आ गई थी, वह प्रत्याहारसे दूर हो गई और अब उसको अपनी शक्तिका पता लगा है!!! जब यह अनुभव आने लगता है, तत्पश्चात् धारणा ध्यान समाधिमें उसका द्रुत प्रवेश अर्थात् शीघ्र गति हो जाती है और आत्मसाक्षात्कारका मार्ग निष्कटक हो जाता है।

इस प्रकार प्राणायाम प्रत्याहारका विचार है। इसका यथायोग्य आचरण करनेसे बहुतही लाभ होते हैं। उनका थोडासा और अत्यंत सक्षेपसे वर्णन ऊपर कियाही है। आशा है कि पाठक इसका योग्य विचार करेंगे और अपना मार्ग आक्रमण करनेके विचारमें दत्तचित्त होंगे। जो प्रयत्न करेंगे उनको सिद्धि अवश्य मिलेगी।

समाप्त

योगसाधनकी तैयारी

विषयसूची

गीताका राजकीय तत्त्वालोचन

लेखक- प. श्री. दा. सातवळेकर, 'गीतालंकार'

भगवद्गीताकी आलोचना धार्मिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे करनेकी रीति सुप्रसिद्ध है। आजतक भगवद्गीताकी आलोचना धार्मिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे बहुतोंने अनेक बार की है। इस पुस्तकमें गीताकी आलोचना राजनैतिक दृष्टिसे की है।

भगवद्गीता अध्यात्मशास्त्रका ग्रंथ है, इसमें संदेह नहीं है। परन्तु अध्यात्म शास्त्र केवल परलोकका ही विचार करता है, ऐसा कहना अशुद्ध है। वैदिक धर्मकी परंपरामें सब शास्त्रोंका आधार अध्यात्मशास्त्र है। इसलिये राजनैतिक विचारोंका आधार अध्यात्मशास्त्र कैसा है, यह बात आजकलके दिनोंमें अधिक स्पष्ट होनी चाहिये। इस हेतुसे ही इस पुस्तकमें यह बतानेका यत्न किया है और बताया है कि भगवद्गीताका सिद्धांत वैदिक राज्यशासनके लिये किस रीतिसे अनुकूल है।

इस पुस्तकमें अध्यात्मशास्त्रके आधारपर राज्यशासन किस तरह चल सकता है, इसका विचार किया है। आशा है कि यह लेखमाला भगवद्गीतापर नया प्रकाश डालेगी और हमारे आर्यबालोंके अन्दर जो गुप्त विद्या है, उसको जागृत करेगा।

इसमें निम्नलिखित लेख हैं—(१) कुरुक्षेत्रकी घोषणा, (२) भगवद्गीताकी कुछ संज्ञाओंका पारिभाषिक अर्थ, (३) सब विश्व एक ही अखण्ड जीवन है, (४) ईश्वरके विश्वरूपदर्शनका मनुष्यके व्यवहारपर परिणाम, (५) अनन्य योग, (६) भागवत राज्यशासन, (७) कर्मयोग, (८) क्या कर्म-परम्परासे व्यवहार हो सकता है ? (९) योग और व्यवहार, (१०) श्रीमद्भगवद्गीताका ध्येय क्या है ? पृष्ठसंख्या १२० मू० १) रु. तथा डा. व्य. ॥)

मंत्री—स्वाध्याय मण्डल, 'आनन्दाश्रम'
किल्ला पारडी, जि. सूरत